गृहा मा बिभीत (वेद)

"गृहस्थ के पवित्र दायित्वों से डरो नहीं, गृहाश्रम के पुण्य-प्रापक कर्त्तव्यों से भागो नहीं।"

सुनो, सुनो! संसार के ओ निराश और हताश मानवो, वेद माँ की इस नव जीवनप्रद लोरी को सुनो !!

पवित्र वेद में गृहाश्रम को ही 'स्वर्ग' कहा है। पर मध्य युग में सभी जन वैदिक सनातन सचाइयों को भूल गये थे। बौद्धों के शून्यवाद और 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के झूठे अध्यात्म ने गृहस्थ को जंजाल बताकर गृहस्थ के पवित्रतम दायित्व से पराङ्मुख कर सम्पूर्ण देश को अकर्मण्यता-जन्य गरीबी और गुलामी के अतल तल में डुबा दिया था। राष्ट्र-जीवन की आधार नारी जाति के प्रति हीनता की भावना भी इसी दुष्ट मान्यता का स्वाभाविक परिणाम थी। ऋषि दयानन्द ने 'ज्येष्ठो गृहस्थाश्रमः' तथा 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' के मनु प्रोक्त वैदिक सन्देश द्वारा नारी जागृति का शङ्खनाद करते हुए हमें उद्बुद्ध किया। देश जागा और कर्त्तव्य-पथ पर आगे बढ़ा। फलतः देश स्वतन्त्र हुआ यह एक पहलू है।

वरदान जब अभिशाप बन गया !

सच में वे क्षण कितने धन्य थे, कितने सुदिव्य, जब प्रताप, शिवा, गुरु अर्जुन, गुरु गोविन्द के लाड़लों और वन्दा वैरागी से लेकर महर्षि दयानन्द और उनकी अमर परम्परा में शत-शत जाने और अनजाने बलिदानी वीरों के अमर बलिदान महान् भारत की स्वाधीनता के रूप में सार्थक हो उठे थे। पर वे क्षण कितने दुर्भाग्यपूर्ण थे जब स्वतन्त्र भारत की बागडोर भारत शत्रु मैकाले के अनुवर्ती श्री नेहरू जी और उनके परिवार के हाथों आई जो शरीर से भारतीय होते हुए भी मन और मस्तिष्क से विदेशी थे और हैं।

स्वतन्त्रता का वह दैवी वरदान जब अभिशाप में बदल गया, दुर्भाग्य की वह कहानी कितनी मर्मस्पर्शी है, कितनी लोमहर्षक !

राजनैतिक दासता से हमें मुक्ति मिली पर बौद्धिक और मानसिक दासता ने और भी दृढ़ता से हमें जकड़ लिया। कहने को हम कहते हैं कि हम स्वतन्त्र हैं। पर कहाँ है स्व-तन्त्र, कहाँ है स्व-वेश, स्व-भाषा, स्व-संस्कृति, स्व-सभ्यता। कहीं भी तो 'स्व' के दर्शन नहीं। वरदान अभिशाप बन गया है। स्वतन्त्रता ने घोर उच्छृंखलता का रूप ले लिया है।

पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में अपनी शिक्षा-दीक्षा, आचार-व्यवहार—लगता है जैसे 'स्व'-सर्वस्व बहा जा रहा हो। और तो और 'नारी जागृति आन्दोलन' ने भी तो आज गलत दिशा ले ली है।

हर क्षेत्र में पुरुष के साथ समानाधिकार की चर्चा है। नारी के सच्चे आभूषण शील और लज्जा हवा हो रहे हैं। नारी पूजा की नहीं वासना की वस्तु बन रही है। इसी प्रवाह में गृहस्थ जीवन और उसके पवित्र दायित्वों के प्रति युवक-युवतियों की निष्ठा हो कमजोर हो रही है। औद्योगीकरण से भी गृहस्थ की मर्यादायें उखड़ रही हैं। इसका परिणाम कभी भी सुखदायक न होगा। युग की पुकार है हम अपने 'घरों की ओर लौटें' वहीं हमारी हमारे महान् भारत की और विश्व की खोई शान्ति वापिस मिल सकेगी।

समस्या और समाधान

आज के युग की सबसे प्रमुख समस्या है—मानवता से युक्त 'मानव' का अकाल। ये नारे गलत हैं कि हमारे देश में रोटी, कपड़े और मकान का अकाल है। हाँ, ये चीजें अधिक नहीं हैं, यह ठीक है। पर यदि हम सब मिल बाँट कर खायें, मिल बाँट कर पहनें, मिल बाँट कर आवास तथा अन्य सुविधाओं का उपभोग करें तो किसी को भी किसी वस्तु की कमी न रहे। मानव में इसी दैवी वृत्ति का नाम है मानवता। आज इसी का अभाव है।

कैसे हो इस अभाव की पूर्ति ? वेद भी हमारा मार्ग दर्शन करता है—'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्'।

मानव तू मानव बन और दिव्य सन्तान का निर्माण कर। हर वस्तु का महत्व उसके फल से जाना जाता है। आपका फल है।

[illegible] सम माना गया है। निश्चय ही नारी का स्थान समाज मे
और परिवार में सम्राज्ञी का, उसका सबसे गौरवपूर्ण पद है—मात
राम, कृष्ण और हनुमान का निर्माण कर माता कौशल्या, मा
देवकी और माता अञ्जना ने राष्ट्र और मानवता की जो सेवा
इतिहास की थाती किसी भी शासनारूढ़ नारी के लिए यह कदा
कदापि सम्भव नहीं।

सन्तान-निर्माण एक श्रेष्ठतम कला है। कभी इस कला
विधिवत् प्रशिक्षण प्रत्येक युवक-युवती को मिलता था। बीच
अन्धयुग में जहां हम अपना नाम, धाम, काम सभी कुछ भूल बैं
वहां सन्तान निर्माण कला को तो सर्वथा ही भूल गये।

महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में सन्तान
निर्माण के वेदोक्त सूत्र हमें दिये हैं। आज आवश्यकता है, इन सूत्रों
मनन चिन्तनपूर्वक उन पर आचरण किया जाय। बन्धुवर श्री सुरेश
चन्द्रजी वेदालङ्कार (गोरखपुर) ने सन्तान-निर्माण के इन्हीं सुनहं
सूत्रों का कुछ सहेलियों की वार्ता के रूप में बड़ी रोचक शैलीमें प्रस्तु
करने का यत्न किया है। इसे कुछ सजाने-सँवारने का सौभाग्य ह
भी मिल गया है। विश्वास है हमारा यह प्रयास वैदिक परिवारों
निर्माण में सहायक होगा। हमारा यह विश्वास दृढ़ से दृढ़तर होत
जा रहा है कि वैदिक परिवारों के निर्माण से ही वैदिक मिशन व्या
होगा और कि वैदिक वातावरण में निर्मित नई पीढ़ी के निर्माण से ह
नये भारत का उदय होगा और उसी से विश्व शान्ति का पथ प्रशस्
होगा। इसी आशा और विश्वास के साथ आपका ही, —'प्रेम'

विषय प्रवेश

सरला की आयु यही लगभग बत्तीस वर्ष की होगी। यह अधिक पढ़ी लिखी तो नहीं, पर स्वाध्याय एवं सत्संग के कारण जीवन की अनेक गूढ़ बातों और रहस्यों को समझने लगी है।

श्रावण का महीना है। सरला अपने मैके आई हुई है। वहाँ उसे अपने बचपन की सखियाँ भारती, मनोरमा, मधु और कमलेश आदि भी मिल जाती है। बहुत समय के पश्चात् ही ऐसा सुयोग बन पड़ा है, जब ये सभी सखियाँ इकट्ठी हो सकी हैं। इसी से सभी अत्यधिक प्रसन्न है। आत्मीयता और प्रेम का एक स्रोत सा बह चला है, रतनगर की गलियों में।

भारती, मनोरमा आदि सखियाँ अपनी बाल सखी सरला की दिनचर्या, उसके जीवन और व्यवहार में एक विशेषता का अनुभव कर रही हैं। वे देख रही हैं कि अपनी श्वसुराल के वैदिक वातावरण को पाकर सरला कितनी विदुषी पण्डिता हो गई है। पर साथ ही वह कितनी अभिमान-शून्य, मिलनसार और अपने नाम के अनुरूप ही सरल एवं हँसमुख है।

सरला नियत समय पर सोती और समय पर जागती है। बस इतना करने से उसके दिन भर के सभी कार्यों में नियमितता रहती है। वह प्रातः जागते समय और रात्रि को सोते समय पवित्र वेद मन्त्रों द्वारा प्रभु स्मरण और आत्म-निरीक्षण करती है। दोनों समय सन्ध्या, प्रातः अग्निहोत्र, बलिवैश्व यज्ञ और वेद-स्वाध्याय करती है। अपनी माँ और भाभी को घर के कामों में सहयोग देने, कुछ सीने-पिरोने और कातने आदि के काम से भी समय निकाल कर वह

"प्रिय सखियो," सरला ने कहा—" मैं जानती हूँ कि पारिवारिक सुख-शान्ति ही व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की सुख-शान्ति का आधार है। और पारिवारिक सुख-शान्ति बहुत अंशों में निर्भर है माताओं पर। इसी से मैं इस विषय में अपनी बहिनों से चर्चा करना, उन्हें अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक करना अपना सबसे बड़ा धर्म और कर्त्तव्य मानती हूँ। आप लोगों ने तो स्वयं यह सुयोग उपस्थित कर दिया है, जिसके लिए मैं आभारी हूँ। अब आप ऐसा करें कल से दोपहर २ से ४ बजे तक कुछ परिवारों में 'महिला संगोष्ठी' रख लें। आरम्भ और अन्त में प्रभु-भक्ति तथा जीवन-निर्माण विषयक् अन्य एक-दो गीतों के पश्चात् हम सब सखियाँ इन विषयों तथा अन्य पारिवारिक समस्याओं पर विचार किया करेंगी।"

सरला सखी के इस विचार से भारती, मनोरमा आदि सखियों के तो हर्ष का पारावार ही नहीं रहा! आइये आप भी इस 'पारिवारिक संगोष्ठी' में भाग लेकर एक आदर्श 'सखी की सीख' से लाभान्वित हूजिये। ※

दिव्य-कामना

हे प्रेममय प्रभो! तुम्हीं सबके अधार हो।
तुमको परम पिता प्रणाम बार बार हो ॥१
ऐसी कृपा करो कि हम सब धर्मवीर हों।
वैदिक पवित्र धर्म का जग में प्रचार हो ॥२
सन्देश देश-देश में वेदों का दें सुना।
सद्भाव और प्रेम का सब में प्रसार हो ॥३
असहाय के सहाय हों उपकार हम करें।
अभिमान से बचें हृदय निर्भय उदार हो ॥४
फूलें फलें संसार में यह रम्य वाटिका।
कर्त्तव्य अपने का सदा हमको विचार हो ॥५
स्वाधीनता के मन्त्र का जप हम सदा करें।
सेवा में मातृ-भूमि के तन-मन निसार हो ॥६

१

मनुर्भव जनया दैव्यंजनम्

प्रथम दिन की यह 'सखि-संगोष्ठी' मनोरमा के यहाँ हुई। सरला भारती, मधु, और कमलेश के अतिरिक्त मोहल्ले की कुछ और बहिनें भी समय से पूर्व ही आगई थी।

सरला ने सबसे पहले ईश्वर प्रार्थना का यह यह गीत बड़े ही मधुर कण्ठ से गाया:—

* हे प्रेममय प्रभो! तुम्ही सबके अधार हो।

अन्य सभी सखियों एव बहिनो ने भी बडी भक्ति-भावना से गीत-गायन में सरलाजी का साथ दिया। गीत से उत्पन्न शान्ति और निस्तब्धता को तोडते हुए भारती ने प्रश्न किया—"सरलाजी! मनुष्य क्या है? मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है? मानव जीवन का क्या उद्देश्य है? क्या स्त्री और पुरुष समान हैं?"

भारती के प्रश्नों की बौछार सुनकर अपनी सहज मुस्कराहट की किरणें बिखेरती हुई सरला जी बोली, "प्रिय सखी भारती! हमारा यह अत्यन्त सौभाग्य है कि प्रभु ने हमे मानव बनाया है। मानव सब प्राणियों का सिरताज है। हमें प्रभु का बार-बार धन्यवाद करना चाहिए कि उसने हमें मानव बनाया।"

मानव-प्रभु की श्रेष्ठतम कृति

अभी सरला जी अपनी बात पूरी भी न कर पाई थी, कि मनोरमा झट से बोल पडी—"दीदी, तुम्हारी यह बात जँचती नही। मानव जीवन तो अत्यन्त सङ्कटपूर्ण जीवन है। क्या तुम जङ्गल मे निर्द्वन्द्व छलांगे भरते हुये हरिण से मनुष्य को अधिक

* यह गीत पृष्ठ १० के अन्त मे पढ़े।

सौभाग्यशाली समझती हो? क्या तुम जङ्गल में खिले हुये और हवा को सुगंधित करते हुए फूल से खेल रहे भ्रमरों को मानव से हीन मानती हो ? क्या कोकिल की वाणी मानव की बोली से कम सुखदायक है ? क्या मयूर का नृत्य मानव को कभी प्राप्त हो सकता है ? उड़ती हुई तितलियों, गाती हुई मनाओं और तोते की सुन्दर वाणी क्या मानव से किसी भी रूप में कम है? क्या सिंह का पराक्रम, हाथी की विशालता, गैंडे की कठोरता मनुष्य में आ सकती है ? तो वह कौन-सी वस्तु है जिसके कारण तुम मनुष्य को प्रभु की सौभाग्यशालिनी संतान मानती हो ?"

सरला जी ने मनोरमा की बात सुनकर रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक कविता का भाव सुनाते हुए कहा, 'भगवान् फूल से उसे दी हुई सुगन्ध की, रङ्ग की मांग करता है। कोकिल से वह केवल उसे दी हुई कुहुँ कुहुँ की अपेक्षा करता है। वृक्ष से वह केवल उसके अपने दिये हुए फलों की आशा रखता है। लेकिन मनुष्य के सम्बन्ध में प्रभु का नियम निरालाहै। मनुष्य से वह दुःखों को सुखों में परिवर्तन की आशा करता है। प्रभु की अभिलाषा है कि मानव अन्धकार को प्रकाश में परिवर्तित करे, वह चाहता है—मनुष्य अनृत को ऋत में बदले। उसने मनुष्य को सृजनशील जो बनाया है।

इसी बात को हम इस प्रकार कह सकते हैं कि मनुष्य को प्रभु ने कर्तृत्व शक्ति दी है। वह अपनी इच्छानुसार जो चाहे बन सकता है।, जो चाहे कर सकता है। हम मनुष्य मरण से अमृत्व प्राप्त कर सकते हैं। अपने चारों ओर फैले हुए असत् से सत् प्राप्त कर सकते हैं। तो आयें हम विष में से सुधा का सृजन करें, इस अमंगल से मङ्गल का निर्माण करें।

शेक्सपीयर ने एक स्थान पर मनुष्य के बड़ेपन का इस प्रकार वर्णन किया है कि मनुष्य कैसे बोलता है; कितने सुन्दर ढङ्ग से चलता है, कितना सुन्दर दिखाई देना है, उसका हृदय कितना बड़ाहै, उसकी विचार शक्ति कैसी है, कैसी विशाल दृष्टि है, उसकी ! मनुष्य निस्सन्देह भगवान की श्रेष्ठतम प्रतिकृति है।

नर देह के महत्त्व का भारतीय सन्तों ने तो मुक्त कण्ठ से वर्णन किया है:—

धन्य-धन्य है यह नर देह।
यह है अपूर्वता का गेह॥

—ये उद्गार समर्थ स्वामी ने प्रकट किये हैं।

बहुना पुण्य पण्येन क्रीतेयं कायनौस्त्वया।

—यह मनुष्य शरीर तुझे बड़े भाग्य से मिला है। सन्त तुकाराम ने नरदेह को 'मोने का कलश' कहा है।

बर्नार्डशा ने एक स्थान पर आलंकारिक शैली में कहा है-बात सोचते-सोचते भगवान् ने हजारों प्राणियों का निर्माण कर दिया कि वे प्राणी मेरा उद्देश्य पूरा करेंगे, मेरी आशा सफल करेंगे लेकिन उनकी आशा अपूर्ण रही। पहले के अनुभवों से लाभ उठाकर भगवान ने नवीन प्राणियों का निर्माण किया, लेकिन वह नवीन प्राणी भगवान् को निराश ही करते थे। ऐसा करते-करते भगवान् ने मानव का निर्माण किया। अपनी चतुराई खर्च करके, सारे अनन्त अनुभव उण्डेल कर भगवान ने इस दिव्य प्राणी का निर्माण किया और वह रुका।

उसने देखा मानवों में से ही उसके 'सत्य शिवं सुन्दर' के उद्देश्य को पूरा करने वाले प्राणी हुए। सचमुच राम हुये, कृष्ण हुये, बुद्ध हुये शंकर हुये, स्वामी दयानन्द हुये, स्वामी श्रद्धानन्द हुये, महात्मा गांधी हुये, लेखराम हुए, गुरुदत्त विद्यार्थी हुये, भगतसिंह हुये, और रामप्रसाद बिस्मिल हुये। महिलाओं में सीता, सावित्री, गार्गी भारती आदि ने अपने ज्ञान से विश्व को चमत्कृत किया तो विदुला जैसी स्त्रियों ने अपने युद्ध पराङ्मुख पुत्र को 'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः न च धूमायितं चिरात्' एक क्षण प्रकाशित होकर बुझ जाना अच्छा है, धुँआ धुआं करके जलना अच्छा नहीं' कहकर युद्ध क्षेत्र में विजय की प्रेरणा दी। झांसी की रानी लक्ष्मी बाई ने अपनी वीरता से अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये, सरोजिनी नायडू का नाम भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में अमर रहेगा। रामप्रसाद बिस्मिल की माँ ने बचपन

ने भी अपने बच्चे को स्वामी दयानन्द का यह संकेत सुनाकर 'गन्दे से गन्दा स्वदेशी राज्य, अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से अच्छा है' फांसी को रस्सी को चूमने की प्रेरणा दी। मन्त्रा बहन बोली—'मनोरमा, तुम्हीं बताओ क्या पशु भी यह कार्य कर सकते हैं? प्रकट है कि मानव को छोड़कर यह कार्य करने की शक्ति और किसी में नहीं है अतः मानव ही संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है।

मानव और पशु का अन्तर

—मन्त्रा का कथन जारी था मानव और पशु में यही तो अन्तर है कि पशु नवीन निर्माण नहीं कर सकता है। मनुष्य शब्द का अर्थ है 'मत्वा कर्माणि सीव्यति'(निरुक्त ३।७) जो विचार कर कर्म करे, अन्धाधुन्ध कर्म न करे। कर्म करने से पूर्व जो भली प्रकार विचारे कि मेरे इस कर्म का क्या फल होगा? किस-किस पर इसका क्या-क्या प्रभाव पड़ेगा? यह कर्म सर्व भूत हित साधक है या प्राणियों की पीड़ा का कारण बनेगा? इसके विपरीत 'पश्यतीति पशु, जो केवल देखकर कार्य करता है, वह पशु है। अर्थात् पड़ी हुई रबड़ी को देखकर जो व्यक्ति दूसरे के सुख-दुःख की बात बिना सोचे उड़ा जाए तो वह बिल्ली, कुत्ता या और कोई प्राणी हो सकता है, मनुष्य नहीं।

मनुष्य और पशु में एक अन्तर यह भी है कि मनुष्य में लम्बी स्मृति होती है पशुओं में नहीं। अर्थात् मनुष्य किसी बात को बहुत देर तक याद रख सकता है। उसकी लम्बी स्मृति का ही तो फल है कि उसने एक के बाद दूसरी उन्नति, दूसरा आविष्कार जारी कर रखा है। यदि मनुष्य में लम्बी स्मृति न होती तो वह अपने प्राप्त अनुभवों का उपयोग न कर पाता। और इसके विपरीत पशु में यदि लम्बी स्मृति होती और उसमें पशुत्व भी रहता तो आपने जिस बैल, या कुत्ते या जानवर को छड़ी मारी होती या जिस बन्दर पर पत्थर फेंका होता या जिस गदहे पर भार लादा होता वह उन बातों को स्मरण करके आपसे बदला लिये बिना न रहता।

मनुष्य और पशु में तीसरा अन्तर यह भी है कि मनुष्य तुल-

तारमक अध्ययन और ज्ञान भी रखता है। पशुओं में यह बात नहीं। अर्थात् मनुष्य दूसरे से अपनी तुलना कर सकता है, जानवर नहीं। यदि जानवर में यह शक्ति होती, तो मनुष्य बड़े सङ्कट में पड़ जाता और संसार में निर्बलों का रहना असम्भव हो जाता। उस दशा में जुता घोड़ा तांगे को पटक कर स्वयं मनुष्य पर बैठ जाता बैल गाड़ी खींचने वाला बैल मनुष्य के कन्धे पर जुआ रखवा देता, क्योंकि मनुष्य से उसकी शक्ति अधिक है।

पर मनुष्य और पशु में बड़ा अन्तर यह है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है और मनुष्यता की उदात्त भावना उसमें विद्यमान है। सामाजिकता ही वह तत्व है जो मनुष्य को मनुष्य के निकट लाता है। उसे उदार बनाता है और दूसरे के लिये बलिदान होने की प्रेरणा देता है।

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात का एक शिष्य सीवियत जो वृद्ध हो चुका था, एक बार बाजार के चौराहे पर जाकर खड़ा हो गया और प्रत्येक पास से गुजरने वाले से पूछने लगा, 'तुम कौन हो?' उनके इस प्रश्न के उत्तर में किसी ने अपने को डाक्टर वकील, प्रोफेसर मल्लाह, व्यापारी, अध्यापक और शिल्पकार बताया, पर अपने को मनुष्य किसी ने न कहा। उनके उत्तर सुनकर सीवियत ने जो कहा वह आज भी उसी प्रकार सत्य है। उसका कथन था कि अब मुझे लगता है कि यूनान की संस्कृति नष्ट हो जायगी। क्योंकि यहां शिल्पकार, कलाकार, वकील, डाक्टर, अध्यापक तो बन रहे हैं, 'मनुष्य नहीं।

मनुष्यता बड़ी चीज है। मनुष्यता सबसे श्रेष्ठ है। क्या आज हमारे देश की यह दशा नहीं? अत. यदि हम राष्ट्र की सेवा करना चाहती हैं तो हमें स्वयं में मनुष्य बनना होगा और हमें सच्ची मातायें बन कर मानवों का निर्माण भी करना होगा।

सरला बहिन की वक्तृता समाप्त होते ही सबकी तन्मयता टूटी और थोड़ी देर चुप रहने के बाद भारती बोल उठी—बहिन, सचमुच परमेश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना मनुष्य और पशु का अन्तर समझ लेने

यह मानवता नहीं। इस परिस्थिति से बचने का उपाय यह है कि हम सच्चे अर्थों में मानव बनें, आर्य बनें और सारे संसार को परिवार समझें। 'मनुर्भव' यह वैदिक शब्द हमारा लक्ष्य हो। भारती के विचारों को सुनकर सरला जी तथा अन्य सखियाँ और महिलायें अत्यन्त प्रसन्न हुईं। सरला जी ने अन्त में मैथिलीशरण गुप्त की यह कविता सुनाई :—

मनुष्य मात्र बन्धु है, यही बड़ा विवेक है,
पुराण पुरुष स्वयंभू पिता प्रसिद्ध एक है।
फलानुसार कर्म के, अवश्य बाह्य भेद हैं।
परन्तु अन्तरैक्य मे, प्रमाणभूत वेद है।
अनर्थ है कि बन्धु ही,
न बन्धु की व्यथा हरे;
वही मनुष्य है कि जो,
मनुष्य के लिये मरे।
विचार लो कि मर्त्य हो, न मृत्यु से डरो कभी,
मरो परन्तु यों मरो, कि याद जो करें सभी।
हुई न यों सु-मृत्यु तो, वृथा मरे वृथा जिये,
मरा नहीं वही कि जो, जिया न आपके लिये।
यही पशु प्रवृत्ति है कि,
आप ही आप चरे।
वही मनुष्य है कि जो,
मनुष्य के लिये मरे ॥

के बाद मानव जीवन का उद्देश्य भी स
है और उसे हम इस प्रकार कह सकते है
वत् सर्वभूतानि पश्यति' अपने समान
देखना है । जिसमें 'आर्यत्व' अ
वह मनुष्य है ।

मानव शब्द सुनियन्त्रित
उच्चता सद्‌व्यवहार, साहस, वि
निर्वलों की रक्षा, उदारता, साम
जिज्ञासा, बुद्धि और सामाजिक
सामाजिक आदर्श का बोध क

मनुष्य वह है जो प्रय
की प्रत्येक वस्तु पर विजय
मार्ग में होती है । आत्म-
नियम है । वह मन औ
वह प्रभु के राज्य को
प्रयत्न करता है ।

इसी मान
मानव को खा
वाघ बन गया
अब क्या ?
जाता है
एक अ
सकल
संस
र

लकड़ी की भांति युद्ध मे अपना तेज दिखाकर वीर गति को प्राप्त होना क्षत्रिय के लिए कल्याणकारी है। सजय ने युद्ध में जाकर माता की आज्ञा का पालन किया और विजय प्राप्त की।

सन्तान के निर्माण में संस्कारों का महत्त्व

"प्यारी सहेलियो !" सरलाजी ने कहा—"सन्तान को सस्कृत करने, उसे निर्मिति देने की प्रक्रिया का नाम ही सस्कार है। माता द्वारा यह निर्माण कार्य बालक के जन्म के भी पहले से आरम्भ होता है। कभी हमारी मातायें इस विद्या में पारङ्गत होती थी। बालक के जन्म से पूर्व 'गर्भाधान' 'पुंसवन' और सीमन्तोन्नयन' सस्कार किये ज ते हैं।

गर्भाधान संस्कार

गर्भाधान सस्कार मे अपने से ऊंचे अपने से श्रेष्ठ और अपनी इच्छानुकूल आत्मा को आमन्त्रित किया जाता था। माता अपने मन मे अपने गर्भ से बालक के आने से पूर्व इस प्रकार के विचार लाना प्रारभ करती थी जो उसे ऐसा पुत्र दे सके जिससे उसका नाम अमर हो सके। गर्भ का पता लग जाने के बाद तीसरे चौथे महीने पुंसवन सस्कार किया जाता था।

पुंसवन सस्कार

पुंसवन सस्कार भी बालक के निर्माण के लिये माता को श्रेष्ठ विचारवती बनाने के लिए एक प्रेरणा थी। इसमे उसे कहा जाता था 'आ वीरो जायता पुत्रस्ते दशमास्य:' दश मास तेरी कोख मे रह कर तेरा वीर पुत्र उत्पन्न हो। जीवन के आरम्भ मे ही माता अपने प्रबल, सशक्त विचारो से, अपनी वेगवती सस्कारों की धारा से अपने पुत्र को निर्माण दिया देने लगती थी। पुंसवन सस्कार उसके भौतिक शरीर के निर्माण के समय का संस्कार था।

सीमन्तोन्नयन

जब बालक के मानसिक शरीर का निर्माण होना प्रारम्भ होता था, तब 'सीमन्तोन्नयन संस्कार किया जाता था। माता के

बाल संवारे जाते थे, उसे अपने सिर एवं मस्तिष्क का विशेष ध्यान रखने को कहा जाता था। माता के सम्मुख घी का कटोरा रखकर पिता पूछता था 'किं पश्यसि' इस कटोरे में क्या देखती हो? माता कहती थी 'प्रजां पश्यामि' मैं इसमें अपनी श्रेष्ठ सन्तान को देखती हूँ। दिन-रात अपनी सन्तान के निर्माण में माता लगी रहती थी। इन नौ-दस महीनों में माता इस एक ध्यान में लीन रहती थी कि उसे एक ऐसी सन्तान को जन्म देना है, जिसे वह अपनी इच्छाओं के अनुसार जो चाहे बना सकती है। उसके गर्भ में जो बन गया उसे फिर बदला न जा सकेगा।

बीच में टोक कर मधु ने पूछा— बहिन, तुम्हारी बात ठीक तो लग रही है, पर यह विश्वास नहीं हो रहा है कि बच्चे को जो कुछ बनना है वह अपनी माँ के पेट में ही बन जाता है। यदि माँ के पेट में ही बच्चे का भविष्य निर्धारित हो जाता हो तो वह कौन सी माँ है जो उसे खराब बनाना चाहेगी। माता तो सदा अपने बच्चे को अच्छा ही बनाना चाहती है। गुप्त जी ने लिखा भी है। 'माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही' जब माता कुमाता नहीं तब पुत्र कुपुत्र कैसे हो जाता है?

सरला बहन ने इस विषय को जरा विस्तार से समझाते हुए कहा, सुनो सखि, इस समय वह बच्चा एक ऐसी मशीन में पड़ जाता है। जिसमें उसके 'कारण शरीर' को पकड़ कर अपने संस्कारों के ढांचे में उसके संस्कारों को ढाला जा सकता है। आत्मा का 'कारण शरीर' में बँध जाना, 'कारण शरीर' का माता पिता के रज वीर्य में बँध जाना, माता पिता के अङ्ग-अंग से ही आत्मा का इस जन्म में इस रूप में आ सकना—इसके बिना न आ सकना-ये सब बातें माता-पिता के हाथ में एक ऐसा साधन दे देती हैं जिससे वे सन्तान को जो चाहें बना सकते हैं।

इतिहास में हमें अनेक उदाहरण दिखाई देते हैं। अमेरिका के प्रेसीडेण्ट गारफील्ड का घातक गीटू जब पेट में था तब उसकी माता

गर्भपात की औषधियाँ खाकर उसे गिराना चाहती थी, वह न गिरा, परन्तु उसके घातक विचारों ने गर्भगत बालक को हत्यारा बना दिया।

सरला बहन ने आगे कहा कि तुमने जो यह पूछा कि माता कुमाता नही होती तो पुत्र क्यों कुपुत्र हो जाते हैं ? अच्छा प्रश्न है। इसका कारण यह है, माता के बच्चों को निर्माण करने की इच्छा मात्र से हो तो काम सिद्ध होगा। उसे इसके लिए तपस्या करनी होगी साधना परिश्रम, त्याग और अपने में सद्विचार के तत्व लाने होंगे। उसे भोग-विलास, वासनायें और बुरी बातों के चिन्तन से बचना होगा।

आज हम बच्चों की अनुशासनहीनता और उनके दोषों से परेशान हैं। सरकार परिवार नियोजन को सफल बनाने के लिये गर्भपात को कानूनी जामा पहनाने की सोच रही है। लूपबन्दी, नसबन्दी आदि के कार्यक्रम को सफल बनाने का सतत प्रयत्न हो रहा है। परन्तु याद रखना गर्भपात के अपराध का भय निकल जाने एवं भ्रष्ट उपायों का प्रभाव यह होगा कि 'मातृत्व की भावना' का स्थान भोग-लिप्सा ले लेगी और उस समय जो अचानक सन्तानें बच जाएँगी वे गीदड़ के समान भयङ्कर और घातक होंगी। अमेरिका में आज यही तो हो रहा है ! आवश्यकता है समय रहते हम सजग हों।

नेपोलियन की माता की साधना

साधना और तपस्या के द्वारा जो सन्तानें उत्पन्न होंगी वे शिवा की तरह वीर, राष्ट्र-भक्त स्वतन्त्रता प्रेमी दीनों और निर्धनों की रक्षक होंगी। नेपोलियन की माता जब गर्भवती थी तब नित्य फौजो की कवायद देखने जाती थी। सैनिकों के जोशीले गीत सुनती थी, उससे उसके हृदय में जो वीरता की तरंग उठती थी उन्होंने नेपोलियन को जन्म दिया।

गर्भगत संस्कारों की महिमा : अभिमन्यु का प्रशिक्षण

कौरव और पांडव सेना में चक्रव्यूह को तोड़ने की शक्ति अर्जुन के अतिरिक्त अभिमन्यु में ही थी। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह-भेदन की विद्या अपनी माता के गर्भ में सीखी थी। [illegible] जिसने नेपोलियन को हराया उसके विषय में कहा जाता है कि जिस माता के

गर्भ में वह था, वह अपने घर के द्वार पर लगे हुए नैपोलियन की सेना की तलवारों के चिन्हों को जब देखा करती थीं, उस समय उसके हृदय में फ्रांस से बदला लेने की इच्छा प्रबल हो उठती थी। इन संस्कारों ने फ्रांस से बदला लेनें वाला बिस्मार्क पैदा कर दिया। गर्भावस्था की दस महीने की मशीन इतनी जबर्दस्त है, इस समय बालक पर डाले गये संस्कार इतना वेग रखते हैं कि जन्म जन्मान्तर के संस्कार ढीले पड़ जाते हैं। तभी मनुष्य जन्म को दुर्लभ माना गया है। अन्य जन्मों में यह बात सम्भव नहीं।

भारती बड़ी गम्भीरता से इन वचनों को सुन रही थी। उसके मन में कुछ कहने की उत्कण्ठा जागृत हो ही रही थी कि कमलेश ने प्रश्न कर दिया "बहनजी, कारण शरीर क्या है जो माता-पिता के रज-वीर्य में बंधता है ?"

भारतीय नारी का गौरव

सरला बहन ने कहा कि आज तो समय बहुत अधिक हो गया है। तुम्हारा प्रश्न समझने योग्य है इसमें समय भी लगेगा। इसलिए अगले दिन की बैठक में हम तुम्हें कारण शरीर और रजवीर्य से बंधने का तात्पर्य समझायेंगे। आज तो बस यह याद रखो 'भारतीय स्त्री का स्वरूप माता का स्वरूप है। वह 'मिस इण्डिया' या 'मिस वर्ड' नहीं बनना चाहती वह तो विदुला, गार्गी, मैत्रेयी और जीजाबाई बनना चाहती है। कौशल्या, देवकी, अञ्जना और जानकी बनना चाहती है। वह तपस्या की साक्षात् प्रतिमा है। साधना और संयम का मूर्तिमानरूप है। वह बालकृष्ण से बातें करती है, उसे शिक्षित करती है, उसके जीवन निर्माण के लिये हर सम्भव यत्न और तप करती है। सबकी सेवा करना ही उसका काम है। वह कभी सन्तान को जन्म देती है, कभी भोजनादि के द्वारा परिवार का पालन-पोषण करती है, परिवार की उलझी बातों को सुलझाती है, अटकी बातों का समाधान करती है। हाव-भाव बनाव-ठनाव और उच्छृङ्खल जीवन के लिये उसके पास कोई समय और अवकाश नहीं। सम्पूर्ण परिवार का आनन्द,

परिवार का सुख उसका आनन्द है, उसका सुख है, उसका विनोद है। वह शराब के नशे में चूर अपने गिरे हुए पति को प्रेम से उठाकर श्रद्धानन्द बना देती है। वह घर का सारा अपमान सहकर घर को स्वर्ग बना देती है। क्षमामूर्ति वह पति के हजारों अपराधों को क्षमा कर देती है। पवित्रता का आदर्श है, सहनशीलता की साक्षात प्रतिमा है। अपने बच्चों को सभालने वाली और यों राष्ट्रिय जीवन को प्राणवान् बनाने वाली माता को अनन्त प्रणाम।

आज की इस पारिवारिक सगोष्ठी के अन्त में सरला जी के साथ सभी ने समवेत स्वर में मातृ-महिमा का यह गीत गाया:—

जो करे पुत्र निर्माण माता सोई

विद्या पढ शुभ वृत्ति बनावे, माता के गुण-गण अपनावे।
जो करे दूर अज्ञान माता सोई ॥ १
संस्कार कर पुत्र बनावे, बलवर्द्धक नित भोजन खावे।
हो वैदिक गर्भाधान माता सोई ॥ २
बालक को शुभ शिक्षा देवे खान पान की सुध बुध लेवे।
दे गाली, न मार माता सोई ॥ ३
वैर-द्रोह का भूत नसावे, देश धर्म पर बलि-बलि जावे।
करे देश कल्याण माता सोई ॥ ४
पुत्र बने मेरा सत्यकर्मी, ध्रुव प्रह्लाद हकीकत धर्मी।
दे ऐसा वरदान माता सोई ॥ ५
राम भरत और लक्ष्मण मानो, भीम युधिष्ठिर अर्जुन ज्ञानी।
वीर जने सन्तान माता सोई ॥ ६
बने कौशल्या देवकी माता, राम कृष्ण की जो निर्माता।
करे देश उत्थान माता सोई ॥ ७
हौआ कह बच्चे न डरावे, कभी किसी से भय न दिखावे।
दे हाथ धनुष और बाण माता सोई ॥ ८
आर्य जनों की अंतिम विनती, बनो बहन सारी गुणवन्ती।
करे जगत कल्याण माता सोई ॥ ९

३

ममपुत्राः शत्रुहणः मे दुहिता विराट्

वास्तव में मनुष्य का स्वभाव ही उसे लोकप्रिय बनाता है। सरला बहन हँसमुख, सेवा में अभिरुचि लेने वाली और करुणामयी बहन की तरह थीं। जो उनके सम्पर्क में एकबार आता उनकी शिक्षा-दायिनी सुरुचि-पूर्ण बातें उसे मन्त्र-मुग्ध कर लेती थीं। उन्होंनेकितने ही परिवारों की अज्ञानता दूर कर सद्धर्म से उन्होंने परिचित कराया था। उनकी वाणी का प्रभाव, सरल और रोचक विधि से समझाए गये तत्व सभी सहेलियों को बहुत पसंद आते थे। आज की पारिवारिक-सखि संगोष्ठी' कमलेश के यहाँ थी। सखियों ने उन्हें घेर लिया। सर्व प्रथम सरला जी के साथ सभी सखियों ने पारिवारिक उपासना का यह गीत मिलकर गाया:—

पारिवारिक प्रार्थना

हे दयामय ! आपका हमको सदा आधार हो।
आपके भक्तों से ही भरपूर यह परिवार हो॥ १॥
छोड़ देवें काम को और क्रोध को, मद-मोह को।
शुद्ध और निर्मल हमारा सर्वदा व्यवहार हो॥ २॥
प्रेम से मिल-मिल के सारे गीत गायें आपके।
दिल में बहता आपका ही प्रेम-पारावार हो॥ ३॥
जय पिता, जय-जय पिता, जय-जय तुम्हारी गा रहे।
रात दिन घर में हमारे आपकी जयकार हो॥ ४॥
धनधान्य घर में जो प्रभो ! सब आपका ही है दिया,
उसके हित प्रभु आपका धन्यवाद सौ-सौ बार हो॥ ५॥

गीत की समाप्ति पर सरलाजी कुछ कहने को सोच ही रही थी, कि कमलेश ने अभिलाषा प्रकट की—"आप कारण शरीर क्या है ? और यह पुरुष तथा स्त्री के वीर्य और रज से कैसे सम्बन्धित होता है ? यह बताने की कृपा करें। इससे हम सस्कारों के महत्व को और अधिक गहराई से समझ सकेंगी।

संस्कार—विवेचन

कमलेश की बात सुनकर सरला बहन ने कहा—"ठीक है मैंने कल इसी विषय पर तुम्हें कुछ बताने का वचन दिया था। अच्छा सुनो, संस्कार शब्द तुमने सुना है। सस्कार किसे कहते हैं ? हमने एक चाक का टुकडा लिया और उसे ब्लैक बोर्ड पर दे मारा। ब्लैक बोर्ड पर एक चिन्ह पड़ गया। यह चिन्ह सस्कार हुआ, और चाक का वहाँ फेंकना कर्म। इसी प्रकार मनुष्य कर्म करता है और कर्म के बाद उसके संस्कार उसकी आत्मा पर पड़ते हैं। इन सस्कारो से ही मनुष्य बनता है। प्रत्येक जन्म में संस्कार पड़ते हैं, अच्छे या बुरे—यही तो इस जन्म की, पिछले जन्मों की और अगले जन्मों की कहानी है। मनुष्य जन्म का उद्देश्य शुभ संस्कारों द्वारा आत्मा के मैल को धोना और निखारना है। उपनिषद् के ऋषि ने इसीलिये कहा था "इह चेदवेदीत् अथ सत्यमस्ति, न चेदवेदीत् महती विनष्टि." अर्थात् इस जन्म में अमर आत्मा को जान लिया तो ठीक, जन्म सार्थक हो गया, न पाया तो नाश, महानाश हो गया।

कारण शरीर का स्वरूप

अब रही, कारण शरीर की बात ! कर्म के विषय मे मानव समाज में अनेक प्रकार की बातें प्रचलित हैं। किसी का विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य की पीठ पर विद्यमान फरिश्ते उनके कर्मोंको बहियो में लिखते रहते हैं, दूसरी ओर लोग चित्रगुप्त की बही मे कर्मों के लेखे जोखे के लिये जाने की बात कहते सुनाई देते है। परन्तु, तुम याद रखना कर्म किसी रजिस्टर मे नही लिखे जाते। कर्म तो चाक के समान अपने संस्कार, अपनी लकीर, अपनी रेखा या निशानी

चले जाते हैं। कर्म की आत्मा पर पड़ी हुई निशानी, चिन्ह या लकीर ही संस्कार कहे जाते हैं। आत्मा पर एक कर्म नहीं लिखा जाता, वरन् कर्मों के कारण आत्मा के जो संस्कार बनते हैं, उनसे आत्मा की रुचि उसकी प्रवृत्ति उसकी गति की दिशा बनते जाना ही कर्मों की शृङ्खला का लिखा जाना है।

मान लो, हम भोजन करते हैं, वह भोजन पचकर शरीर बन जाता है, वैसे ही हम कर्म करते हैं, उन कर्मों से तत्काल उनका फल-संस्कार बन जाते हैं। जब भोजन शरीर बन जाता है तो उस भोजन से हमें निपटना नहीं पड़ता है। इसी प्रकार संस्कार बन जाने के बाद अलग-अलग कर्मों से हमें उलझना नहीं पड़ता है। अर्थात् जिन कर्मों का फल हमें तत्काल नहीं मिला वे कर्म अपना संस्कार छोड़ते जाते हैं, वैसे के वैसे बने रहते हैं। संस्कारों का सिद्धान्त ही यह है कि एक एक कर्म से हमारा सम्बन्ध नहीं रह जाता। हमारा सम्बन्ध संस्कारों से, आत्मा की रुचि से, प्रवृत्ति से रह जाता है। कर्मों का प्रश्न संस्कारों के बन जाने पर समाप्त हो जाता है, और इसके बाद हमारी वास्तविक समस्या कर्म नहीं रहते, संस्कार हो जाते हैं। संस्कारों का पुञ्ज ऋषि मुनियों के शब्दों में 'कारण शरीर' या 'सूक्ष्म शरीर' कहा जाता है।

सन्मुख धूमिल पड़ जाते है, तभी इस जन्म को दुर्लभ माना गया है। *यदि यह नष्ट हो गया तो हमें असंख्य योनियों मे भटकना पड़ेगा।*

इस प्रकार तुम आसानी से समझ सकती हो कि बच्चे के भविष्य के निर्माण में माता का कितना सम्बन्ध और कितना प्रभाव है। उस समय माता का हाथ विश्वकर्मा का हाथ है। वह जो चाहे कर सकती है। इस कारण कहा गया है, 'न मातुः परं दैवतम्' माता से बढ़ कर और कोई देवता नहीं।

सरला बहन ने भावावेश मे आकर कहा "मैं तुमसे पूछती हूँ कि क्या कभी तुमने सोचा है कि स्त्री का वास्तविक स्वरूप माता— अर्थात् पवित्रता, वत्सलता कारुण्य कारण शरीर पर अपने वेगवान् शुभ संस्कारों द्वारा पुराने संस्कारों को अच्छे में परिवर्तन करने वाले विश्वकर्मा का है। एक आदर्श माँ के स्तन्य का स्पर्श जिन होंठो को हुआ हो, वे होंठ अपवित्र वाणी का उच्चार नहीं करेंगे, निर्बलता का वचन मुँह से नहीं निकालेंगे, द्वेष का सूचन तक न करेंगे, पाप को नहीं सँवारेंगे, पौरुष की हत्या नहीं करेंगे और भोले लोगों को धोखा नहीं देंगे।

जब माँ का वास्तविक स्वरूप हम समझ लेंगी तो हमा[illegible] ज समार से रोग और कष्ट को दूर कर देगा। ऐसी माता के मन्दिर मे कला रहेगी, पर कला के नाम पर विचरने वाली विलासिता नहीं रहेगी। सच्ची माता के भवन में प्रेम का वायुमण्डल रहेगा, केवल सौन्दर्य का मोहन नहीं। माता के उपवन में प्राणों का स्प[illegible] निराशा का निःश्वास नहीं। माता के लता कुञ्जों मे विश्व प्रे[illegible] सङ्गीत गूँजेगा, परस्पर अनुनय का मूर्खतापूर्ण कल कूजन नहीं। [illegible] के विहार मे स्वतन्त्रता की धीरोदात्त गति होगी, उद्देश्यहीनता और स्खलनशील नहीं। माता के पीठ (स्थान) में ब्रह्म रस का प्रवाह होगा विषय रस का उन्माद नहीं।

पृथ्वी पर जब कहीं असली माता आ जाती है तो उससे [illegible]वी के वदन कमल पर सुहास्य फैल जाता है: उस समय वन-श्री का

के तीव्र वेगों से जो चमत्कार किये हैं उनके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु माता बनने के लिए हमें आत्म-निर्माण करना होगा। इस विषयमें सरलाजी हमारा मार्ग दर्शन करें,ऐसी प्रार्थना है। सरला बहन ने आज समय अधिक हो जाने के कारण पुनः इस सम्बन्ध में विचार करने का आश्वासन दिया। अन्त में निम्न गीत के साथ आज की गोष्ठी का कार्यक्रम समाप्त हुआ—

मातृ-शक्ति महिमा

नारी नव-निर्माण, करे कर सकती है,
जगती का कल्याण, करे कर सकती है।
तू सच्ची बन महतारी, जो चाहे करले नारी,
बिगड़ी बन जाये सारी, शक्ति है न्यारी न्यारी।
त्राण कर सकती है, जगती का कल्याण....।
ज्योति बन ज्योति जगाये, तम सारा दूर भगाये।
पानी में आग लगाये, वायु तक रोक दिखाये।
प्राण भर सकती है—जगती का कल्याण....।
कौशल्या राम बुलाया, घर कृष्ण देवकी आया,
घर भरत कैकेयी जाया, नारी की निराली माया,
पुनः जग सकती है—जगती का कल्याण...।

इस प्रकार सरला बहन ने आज कारण शरीर और संस्कारों के महत्व के साथ ही मातृ-महिमा पर प्रकाश डाला।

जन्मना जायते शूद्रः
संस्काराद् द्विज उच्यते

आज मधु के भतीजे का नामकरण संस्कार था। बहिन सरला जी और सभी सखियाँ आमन्त्रित थी। संस्कार और आशीर्वाद की समाप्ति पर सभी सखियों ने प्रभु का धन्यवाद करते हुए भक्त अमीचन्द का यह प्रसिद्ध गीत गाया—

आज मिल सब गीत गाओ उस प्रभु के धन्यवाद !
जिसका यश नित गाते हैं गन्धर्व ऋषि मुनि धन्यवाद !
मन्दिरों में, कन्दरों में, पर्वतों के शिखर पर,
देते हैं लगातार सौ-सौ बार मुनिजन धन्यवाद ! आज०
कूप में, तालाब में सिन्धु की गहरी धार में,
प्रेम-रस में तृप्त हो करते हैं जलचर धन्यवाद ! आज०
करते हैं जङ्गल में मङ्गल, पक्षीगण हर शाख पर,
पाते हैं आनन्द मिल गाते हैं स्वर भर धन्यवाद ! आज०
गान कर 'अमीचन्द' भजनानन्द ईश्वर-स्तुति,
ध्यान धर सुनते हैं श्रोता कान धर-धर धन्यवाद ! आज०

गीत को सभी सहेलियों ने कुछ ऐसे भाव-विभोर होकर गाया जिससे गीत समाप्ति के पश्चात् भी मधुर स्वर लहरी वातावरण में जैसे गूँजती ही रही। पश्चात् पुरुष वर्ग के चले जाने पर सभी सखियों

यह किस्सा सुनने पर ठहाका लगा और [illegible] देर तक इसे सोच कर हँसती रहीं। फिर वे बोलीं—नाम रखना एक कला है। स्त्रियों को यह कला विशेष रूप से समझ लेनी चाहिये। यदि हम अपने बच्चों के बेढ़ंगे और बे सिर पैर के नाम रखेंगी तो जहां उन नामों का उनके ऊपर कोई मनोवैज्ञानिक उन्नति विषयक प्रभाव भी नहीं पड़ेगा, वहाँ उनके पुत्र और पुत्रियों श्री ढक्कन लाल, फँकूमल, लोढूराम, छकौड़ी देवी, घिसिया रानी, ड्रिंक वाटर, फोक्स, टिल्लू टिङ्कू, पिङ्कू, और माशूक अली को अपने नाम के कारण जीवन भर लज्जित भी होना पड़ेगा।

हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि नाम हमारे व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। अतः हमें नाम सरल, छोटे और भावपूर्ण रखने चाहिये। नाम ऐसे भी नहीं होने चाहिये कि साधारण व्यक्तियों को उनका उच्चारण करने में या बुलाने में कठिनाई हो। कभी-कभी बड़े विचित्र और लम्बे नाम वैसे ही हंसी के पात्र हो जाते हैं। हिन्दी के एक प्रसिद्ध पुराने लेखक का नाम राजा राधिका रमण प्रसादसिंह तो आपने सुना ही होगा परन्तु अभी एक दिन एक पत्रिका में किसी का नाम 'विद्याभूषण त्रिलोचन विवेककुमार दास वसु' पढ़ कर तो

बहुत हंसी आई। यह नाम है या बाणभट्ट का लिखा कोई छोटा वाक्य।

सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में, स्वामी जी महाराज ने भी विवाह प्रकरण में मनुस्मृति का उल्लेख करते हुये लिखा है

नर्क्ष वृक्षनदी नाम्नी नान्त्य पर्वतनामिकाम्। न पक्ष्यहि प्रेष्यनाम्नी न च भीषण नामिकाम्।

अर्थात् न ऋक्ष अर्थात् अश्विनी, भरिणी, रोहिणीदेई, रेवतीबाई चित्तरी आदि नक्षत्र नाम वाली, तुलसिया, गेंदा, गुलाबी आदि वृक्ष नाम वाली, चाण्डनी, आदि अन्त्य नाम वाली विन्ध्या हिमालय, पार्वती आदि पर्वत नाम वाली इसी प्रकार चंडिका, काली आदि भयङ्कर नाम वाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये। इसके बाद उन्होंने 'सौम्यनाम्नी' सुन्दर अर्थात् यशोदा सुखदा, विमला, भारती आदि नामों वाली लड़की से विवाह करे, ऐसा विधान किया है। यह केवल मनोवैज्ञानिक आधार है इसका भाव यह है कि नाम भी व्यक्ति के सुन्दर होने चाहिये।

कमलेश ने अपने गाँव के एक व्यक्ति के परिवार के लोगो के नाम बतलाये और वहां घूरेमल, पत्तीलाल, डालचन्द, नोटूमल, छत्तीलाल, झब्बूमल और बरफी लाल यह सब भाई हैं। कितने विचित्र नाम हैं। घूरेमल इस नाम का कारण है कि घूरेमल जी से पहले उनके जितने भाई बहन हुये वे सभी छोटी उम्र मे परलोक सिधार जाते थे। लिहाजा मां बाप ने उनका नाम ऐसा रखा कि कोई भूत पिशाच उनकी ओर फूटी आंख से भी न देखे। वे अपने नाम की महिमा से बच गये। यह विश्वास है उनका। पर हमारा तो ख्याल है कि उनका जीवन घूराराम बने बिना न रहा। वे जिन्दा तो जरूर रहे लेकिन उनके मुख पर मक्खियाँ सदा भिन-भिनाती रही और जिन्दगी भर उनका खूब मजाक उडता रहा। सरला बहन ने कमलेश की बात का समर्थन करते हुए कहा सच तो यह है कि नाम हमारे व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है।

नाम की महिमा अपार है। शरीर के न रहने पर नाम रह जाता है। श्री राम एवं श्रीकृष्ण आदि का शरीर नहीं रहा किन्तु उनके नाम अमर हैं। नेकी और बदी भी नाम के ही साथ है। राम और रावण दोनों ही नहीं रहे परउनकी नेकनामी और बदनामीसदा रहेगी। किसी का कथन 'बद अच्छा बदनाम बुरा' नाम के ही महत्व का प्रकाशक है भगवान् के भी नाम का महत्व है। भक्त, भगवान् के नाम का कीर्त्तन, यशोगान करते हैं। पवित्र वेद के शब्दों में 'न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः।' अर्थात् भगवान् की मूर्ति नहीं है, उसके नाम की ही महिमा है।

इसलिये आज इस नामकरण सम्स्कार के समय मैं तुम्हे यही कहूँगी कि हम बच्चों के नाम रखते हुये यह ध्यान रखें कि बच्चे के विषय में हमारे मन में जो संकल्प हों उसे स्थूल रूप देने के लिये और उस भावना को बार-बार बच्चे को स्मरण कराने के लिये उसके अनुरूप नाम रखना चाहिए। बालक और बालिका के सामने हम जैसा लक्ष्य रखना चाहते हैं, वैसा नाम हमें उन्हें देना चाहिये। नाम रख देने का अभिप्राय है जीवन में सदा के लिये, जाने अनजाने, एक विशेष प्रकार का सम्स्कार डालते रहना। सत्य स्वरूप नाम वाला अगर झूँठ बोले, प्रताप और विक्रमादित्य यदि भय से कांपते नजर आयें विद्या भूषण विद्या से विहीन रहे तो उन्हें अपने नाम से स्वयं शर्म आयगी। प्रेमसागर कहलाने वाला अगर हर समय लड़ता झगड़ता रहे तो उसका नाम ही उसको झिड़क देगा। शान्ति यदि शांति भङ्ग कर रही हो तो उसका नाम उसे शांत होने की प्रेरणा दे सकता है।

मधु! तुम्हारे भतीजे का नाम 'सत्यव्रत' रखा गया है। जीवन में सत्य का महत्व बहुत ही अधिक है। तुम्हारा भतीजा 'सत्यव्रत' चिरायु हो, दीर्घ जीवी हो, यशस्वी हो, वर्चस्वी हो, तेजस्वी हो और वह अपने नाम के अनुरूप सत्यव्रती हो, यही मेरी तथा सभीकी परमपिता परमेश्वर से हार्दिक प्रार्थना है।

अन्त में सभी सखियों ने सरला जी के निम्न गीत में सहभागी बन आज की सगोष्ठी को विराम दिया:—

इसकुल का यह दीपक प्यारा बालक आयुष्मान् हो।
तेजस्वी वर्चस्वी निर्भय सर्वोत्तम विद्वान् हो॥
परम भक्त बन परम प्रभु का अपना यश फैलाये ये।
मात-पिता की सेवा कर सच्चा सेवक कहलाये ये॥
नाम अमर करदे जगती में सर्व गुणों की खान हो॥ १
बने सुमन सा कोमल सुन्दर सबको सौरभ दान करे।
दुष्टों से ना डरे कभी भी श्रेष्ठों का सम्मान करे॥
मानव धर्म समझ कर चलने वाला चतुर सुजान हो॥ २
विजय चौतरफ जय हो इसकी पावें सुख सम्मान भी।
शतायु जीवन जीकर निर्भय करे धर्म हित दान भी॥
नेता बने देश अपने का जगती में सम्मान हो॥ ३

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद

अब तक सरला बहन की इस पारिवारिक गोष्ठी की चर्चा देव नगर के घर-घर में चल पड़ी थी। आज मधु के यहाँ आई हुई एक बहन सुधा जी के विशेष आग्रह पर उसके यहाँ ही गोष्ठी का कार्य-क्रम रखा गया। प्रथम भारती ने प्रभु-भक्ति का निम्न गीत गाया। सभी ने उसका साथ दिया—

कल्याण-कामना

कल्याण मेरे इस जीवन का भगवान् न जाने कब होगा?
जिससे भय-भ्रान्ति मिटा करते, वह ज्ञान न जाने कब होगा?
जिससे निज दोष दिखा करते, पापों अपराधों से डरते,
उस सद्विवेक का मानव में, सम्मान न जाने कब होगा ॥२
शीतलता जिससे आती है, सारी अशान्ति मिट जाती है।
वह नित्य प्राप्त है सोम-सुधा पर पान न जाने कब होगा ॥३
अच्छे दिन बीते जाते हैं, गुरुजन बहु विधि समझाते हैं।
भोगस्थल से योगस्थल में, प्रस्थान न जाने कब होगा ॥४
वासना और चिन्ता मन में, फिर कुछ भी नहीं सताती हैं।
जिससे प्रभुजी तेरा दर्शन हो, वह ध्यान न जाने कब होगा ॥५

गीत की समाप्ति पर सरला जी ने पास ही रखे 'सत्यार्थप्रकाश' ग्रन्थ को उठाया और उसके एक पृष्ठ को पढ़ना आरम्भ किया—

ऋषि ने कहा था

'मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषोवेद' यह शतपथ ब्राह्मण का

वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य है। वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् है, जिसके माता पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम (और) उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नही करता, इसलिए [मातृमान्] अर्थात् "प्रशस्ता धार्मिकी माता यस्य स मातृमान्' धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे।" स्वामी दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय समुल्लास के इस अंश का पाठ करने के बाद आज की संगोष्ठी के दिन सरला बहन ने उपनयन संस्कार के महत्व के सन्दर्भ में बालक-बालिकाओं की शिक्षा का उत्तरदायित्व माता पिता और आचार्य पर रखते हुए उन्हें किस प्रकार शिक्षा दें यह बतलाया।

बाल प्रशिक्षण पद्धति

उन्होंने कहा—"बालकों को माता पिता सदा उत्तम शिक्षा करें, जिससे सन्तान उत्तम हों और किसी अङ्ग से कोई कुचेष्टा न करने पावे। जब बोलने लगें तब उनकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जिस वर्ण का स्थान, प्रयत्न अर्थात् 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर सुन्दर स्वर अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान, भिन्न-भिन्न श्रवण होवे। जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे मान्य माता, पिता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनके वर्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें जिससे उनका अयोग्य व्यवहार न होवे सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्सङ्ग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करें। व्यर्थ क्रीडा, रोदन,

बच्चे के निर्माण और वात्सल्य प्रेम की जो भावना होगी क्या वह चिड़ियों के हृदय में होगी ?

विदेशी-सभ्यता की दासता दूर कीजिये

प्रत्येक देश की अपनी विशेषतायें होती है। बोतल का शक्तिशाली दूध बच्चे को उतना स्वस्थ और आनन्दित नहीं कर सकता जितना माता के स्तनों से निकला हुआ अमृतोपम क्षीर कर सकता है।

परिवारों के वैदिकीकरण के लिए अपनी
सन्तानों का स्वदेशी-करण कीजिए।

आज जो हममें सहृदयता, राष्ट्रियता, अनुशासन आदि नहीं रहा है। जो हमारे चरित्र गिर रहे हैं उसका कारण यह हमारी विदेशी शिक्षा है। आज बच्चा उत्पन्न होने के बाद माँ का दूध न पीकर विदेशी बोतल का दूध पीता है। दो वर्ष का होने के बाद माता से शिक्षा न लेकर अपनी मातृ-भाषा को तुच्छ समझ कर विदेशी भाषा में विदेशी परम्परायें और बातें सीखता है। माताजी और पिताजी इन सार्थक और भावपूर्ण पवित्र शब्दों के स्थान पर मम्मी, पापा और डैडी आदि पतनकारी विदेशी शब्दों का प्रयोग करता है। विदेशी वेष, विदेशी भाव एवं विदेशी भाषा अपनाता है। और बड़ा होने पर विदेशी गेहूँ चावल खाता है। परिणामतः उसमें 'स्व' का नाश हो जाता है। आज तक जो उस पर 'स्व' का बन्धन था वह टूट जाता है। और उस 'स्व' के अभाव में आत्म-नियन्त्रण टूट जाता है। और आत्म नियन्त्रण न रहने से वह 'इण्डिपेंडेंट' तो हो सकता है, पर स्वतन्त्र या स्वाधीन नहीं बन पाता। भारतीय संस्कृति, वैदिक संस्कृति, अपने ऊपर अपने बन्धन को महत्व देती है।

मधु ने पूछा 'इंडिपेन्डेन्ट' और 'स्वाधीन' या 'स्वतन्त्र' में क्या अन्तर है ? 'इण्डिपेन्डेन्ट' का अर्थ क्या स्वाधीन या स्वतन्त्र नहीं ?

सरला बहन ने कहा 'इण्डिपेन्डेन्ट' का अर्थ 'अनधीन' है, स्वाधीन नहीं। 'अनधीन' व्यक्ति किसी के अधीन नहीं। वह उच्छृंखल

बन जाता है। वह बिना टिकिट के यात्रा करता है, दूसरे के घर के सामने चुपके से कूड़ा फेंक देता है, दुकान पर चुपके से दूकानदार की कोई चीज साफ कर देता है। दूसरी ओर स्वाधीन व्यक्ति दूसरे के अधीन न होकर अपने अधीन रहता है और यह अधीनता उसको आगे बढ़ने में सहयोग देती है। उसका चरित्र उज्ज्वल और अनुकरणीय बनता है। यह चरित्र निर्माण भारतीय शिक्षा का उद्देश्य है और यह आदर्श माता सिखा सकती है, पिता सिखा सकता है और आदर्श अध्यापक इसमें सहयोग कर सकता है।

यहाँ हम याद रखें कि गुरुकुल योजना को सफल बनाने के लिये हमें गृहकुलों के महत्व को समझना होगा। हम भूलें नहीं कि बालक के निर्माण में पहला स्थान माता का है, दूसरा पिता का और तब तीसरा आचार्य या अध्यापक का। तो बालक की प्रथम गुरु उसकी माता है। महर्षि मनु के अनुसार बालक के निर्माण में पिता का महत्व और उसके साथ ही दायित्व आचार्य से सौ गुना है और माता का दायित्व सहस्र गुना है। अतः जब तक माता-पिता अपने घरों को ही 'गृहकुल' या प्रथम पाठशाला का रूप न दें तब तक केवल गुरुकुल या कॉलेजों से सन्तानों का निर्माण सम्भव नहीं है।

चरित्र, शिष्टाचार और सभ्यता के लिए बालक को आलस्य प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्या भाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या-द्वेष मोह आदि दोषों को छोड़ने और सत्याचार ग्रहण करने की शिक्षा दें। क्रोधादि छोड़कर मधुर वचन बोलने की शिक्षा देनी चाहिए। हमें बालकों को यह भी सिखाना चाहिए कि वे व्यर्थ में बकवास न करें।

जितना बोलना चाहिए उससे कम या अधिक न बोलें। बड़ों का आदर करें। उनके आने पर स्वयं उठकर उन्हें ऊंचा स्थान दें। उन्हें 'नमस्ते' करें। सभा में अपने योग्य आसन पर बैठें। आचार्य माता, पिता आदि का सम्मान करें और उनके वचनों का पालन करें।

बच्चे जब समझदार हो जाँय तब उन्हें शिक्षा प्रारम्भ करने

से पूर्व यह भी शिक्षा देनी चाहिए :—"ऐ बालक, तू आज से ब्रह्मचारी है। जल की प्रभूत मात्रा पिया कर। काम में लगा रह,निठल्ला कभी मत फिर। दिन मे कभी मत सोना, आचार्य के अधीन रहकर विद्याध्ययन करना और ब्रह्मचर्य धारण करना। आचार्य की धर्मयुक्त आज्ञा का पालन करना, अधर्मयुक्त आज्ञा का पालन मत करना। क्रोध और झूठ छोड़ देना, मैथुन मत करना, गदेलों पर मत सोना, गाना, बजाना, नाचना, गन्धमाला, सुरमा आदि लगाना ठीक नही। अति स्नान, अति भोजन, अति निद्रा, अति जागरण, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक छोड़ देना। रात्रि के पिछले पहर में उठ जाना और आवश्यक शौच, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना, उपासना और योगाभ्यास आदि करना। मांस, रूखा सूखा अन्न तथा मद्यादि का सेवन न करना, बैल, घोडा, ऊंट आदि की सवारी न करना। युक्त आहार-विहार से रहना, वीर्य रक्षा करके ऊर्ध्वरेता बनना। अतिअम्ल, अतितिक्त, अतिकषाय, क्षार तथा रेचन आदि वस्तुओं का सेवन न करना। विद्या के ग्रहण में लगे रहना, सुशील बनना, थोडा बोलना, सभ्य बनने का प्रयत्न करना। अग्निहोत्र, सन्ध्या,आचार्य का आज्ञाकारी और प्रतिदिन आचार्य चरणो में नमस्ते करने वाला बनना—ये तेरे नित्य कर्म हैं।

अध्यापन का कार्य भी प्रारम्भ में माता तथा पिता को करना होता है। अतः स्त्रियों को शिक्षित होना आवश्यक है। तैत्तिरीय उपनिषद् में शिक्षा के विषय में विशेष रूप से विचार किया गया है और बताया गया है कि शिक्षा शब्दों द्वारा दी जाती है। शब्दों का निर्माण वर्णों से होता है। 'अ आ इ ई' 'क ख ग घ' वर्ण है। वर्णों के ज्ञान के बाद स्वर अर्थात् उच्चारण का ज्ञान होना चाहिए। माता की प्रारंभिक भूल का परिणाम होता है कि कई बालक 'स' को 'फ,' 'उ' को 'र' 'त' को 'ट' बोलने लगते हैं। वर्ण और स्वरों के ज्ञान के बाद मात्रा का ज्ञान कराना चाहिये। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत इन मात्राओं का ज्ञानशब्दोच्चारण में सहायक होताहैउसके बाद मात्राओं का

'बल' जानना आवश्यक है। उसके बाद 'साम' अर्थात् समता से उच्चारण करना आना चाहिए। वर्ण, मात्रा' बल और समता के ज्ञान के बाद 'सन्तान' अर्थात् बालक को वाक्य विस्तार बताना चाहिए। यह सब बातें तो सुशिक्षित और सन्तान का विकास चाहने वाली माता ही कर सकती है।

शिक्षा देते हुए माता, पिता तथा अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वे प्रश्नोत्तर तथा परीक्षणात्मक पद्धति (प्रयोग विधि)सेबालक के प्रश्नों का स्वयं उत्तर दें और इस विशाल प्रकृति में आंखें खोलने पर उसे जिन वस्तुओं के प्रति जिज्ञासा हो और वह पूछे तो उसे उनका उत्तर दें। प्रश्न पूछने पर डांट देने, थप्पड़ मार देने से बच्चों की जिज्ञासा समाप्त हो जाती है।

प्रयोगात्मक (practical)

पद्धति का सहारा भी ज्ञान में सहायक होता है। छान्दोग्य-उपनिषद् में आचार्य अपने शिष्य श्वेतकेतु से कहते हैं—वट वृक्ष का एक फल लाओ। इसे काटो। इसमें क्या देखते हो ? बीजों को डालो, फिर क्या देखते हो ? कुछ नहीं। आचार्य ने कहा इसी 'कुछ नहीं' में इतना विशाल वट वृक्ष छिपा हुआ है। इस परीक्षण (प्रयोग) द्वारा आचार्य ने ब्रह्म की महान सत्ता का परिचय कराया।

"अन्नं वै प्राणः" यह एक बालक को समझाना बहुत कठिन नहीं। आप उससे कहते रहिये कि अन्न ही प्राण है। वह समझेगा नहीं। श्वेतकेतु को इसी शिक्षा के लिये आचार्य ने १५ दिन तक उपवास करवा कर निराहार रहने का आदेश दिया। पन्द्रह दिन बाद उसे वेदमन्त्र का पाठ करने को कहा। उसने कहा मुझे मन्त्र याद नहीं आते हैं। पुनः भोजन करने को कहा तो सब मन्त्र याद आ गए। इस प्रकार अन्न ही प्राण है यह अनुभव हो गया।

शिक्षा में गुरु द्वारा श्रवण, स्वयं मनन और उसे जीवन में उतारना अर्थात् निदिध्यासन आवश्यक है। विद्या दो प्रकार की होती है। परा तथा अपरा। इस संसार की भौतिक विद्याओं को

'अपरा' तथा 'आत्म विद्या' को 'परा' विद्या कहते हैं। इनका ज्ञान अध्यापक तथा गुरु करवाते हैं,परन्तु सब विद्याओं का ज्ञान-प्रारम्भिक ज्ञान माता को देना चाहिए। हमारी समझ में 'मांटीसरी' आदि विद्यालयों में यह शिक्षा नहीं दी जा सकती। 'न मातुःपरं दैवतम्' माता से बढ़कर दूसरा कोई दिव्य गुरु नहीं, श्रेष्ठ आचार्य नहीं। इसीलिए सत्यार्थ प्रकाश में माता की महती महिमा का स्वामी दयानन्द ने वर्णन किया है।

शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण है। चरित्र निर्माण का अर्थ है 'आत्म-नियन्त्रण' स्वाधीनता या स्वतन्त्रता। यह आत्म नियन्त्रण सुमाता ही सिखा सकती है। यही कारण है कि 'मातृमान्, पितृमान् आचार्यवान् पुरुषोवेद' के द्वारा स्वामी दयानन्द ने अच्छी माता और अच्छा पिता बनने पर जोर दिया है।

प्यारी सखियो !" सरला जी ने अन्त में कहा—"आप सभी प्रायः अपनी सन्तानों की ओर से दुखी हैं, परेशान हैं। इसी मूल समस्या को लेकर ही हमारी इस 'सखी वार्ता' का क्रम चला है। पर बहिनो, समस्या से बचने से नहीं, उसका सामना करने से ही समस्या का हल होगा ! क्षमा करना बहिनो ! इस समस्या का सबसे बड़ा कारण आप स्वयं ही हैं। और इसका समाधान भी आपके ही हाथों में है। बालक के गर्भ में आने के समय से वरन् उससे भी पहले से, बालक उपनयन संस्कार तक माता-पिता और विशेष रूप से माता को अपने कर्तव्य के प्रति बड़ा ही जागरूक रहना होगा।

बहिनो ! हमारे बालक अधिकांश में हमारे ही अन्तर्हृदय की अनुकृति हैं। बालकों को पवित्र बनाने के लिये हमें अपने ही अन्तर्हृदय को पवित्र बनाना होगा। आप स्वयं अपनी निश्चित दिनचर्या बनायें। प्रातः जल्दी उठें, रात्रि को जल्दी सोयें। श्रद्धापूर्वक सन्ध्या-यज्ञ, स्वाध्याय, सास-श्वसुर, पतिदेव जेठ-जेठानी आदि सभी गुरुजनों का भक्तिभाव से अभिवादन,'अतिथि सत्कार' परिवार में वेदकथा और वैदिक यज्ञ, नङ्गों-भूखों को सहायता-दान, क्रोध और झुंझलाहट का त्याग, सदैव प्रसन्न वदन रहना, किसी की भी चुगली और निन्दा से बचना,

अश्लील गीत न गाना, न सुनना, गन्दे फिल्म या दृश्य नहीं देखना, गन्दे उपन्यास-कहानियाँ नहीं पढ़ना कमरों में सिने तारिकाओं के अथवा पौराणिक चित्र या कलेण्डर नहीं लगाना, खान-पान सात्विक रखना, अधिक मिर्च-मसाले और बाजार की चाँट नहीं खाना, वस्त्रों में सादगी और विचारों में उच्चता रखना, हर वस्तु को स्वच्छ और व्यवस्थित रखना, मितभाषी और प्रियभाषी बनना, अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना आदि सद्गुणों को अपने में लाइये। पहले अपना सुधार कीजिये ! आप देखेंगी आपके घर के वातावरण में एक नई बहार आगई है, और आप सभी अपने बालकों में भी एक दिव्य परिवर्त्तन पायेंगी।

बहिनो ! गृहाश्रम योगाश्रम है, भोगाश्रम नहीं। ईश प्राप्ति का सर्वोत्तम स्थल यही है। आपका घर ही सबसे बड़ा तीर्थ है। भगवान् यदि आपको घर में नहीं मिल सकें तो फिर अन्य किसी गुफा और जङ्गल में नहीं मिल सकेंगे।

आप अपनी सन्तान के निर्माण में रुचि लीजिये। इसी में सबसे बड़ी ईश्वर भक्ति मानिये। अपनी सन्तानों को अपने से दूर-दूर न रख, उनके साथ मिलकर पढ़िये, हँसिये, गाइये और प्रभु वन्दना कीजिये। उन्हें बाहर से सजाने की अपेक्षा उन्हें सद्गुणों से अलङ्कृत करने पर अधिक ध्यान दीजिये। क्रोध से नहीं, एकान्त में उन्हें बड़े प्यार से समझाइये। सबके सामने उन्हें कभी झिड़किये नहीं, वरन् उनके अच्छे गुणों की प्रशंसा कीजिये। उन्हें समय २ पर उपहार दीजिये। उत्तम कार्यों और सफलताओं पर पुरस्कृत कीजिये। उनके जन्म-दिवस को सोत्साह मनाइये। मोह नहीं उन्हें सच्चा प्यार दीजिये। आप देखगी आपकी सन्तानें दिव्य सन्तानें बन रही हैं।

सरला जी के मार्ग दर्शन से सभी सहेलियाँ हर्ष-विभोर हो उठीं। सभी ने आत्म-साधना, और अपनी सन्तान को सबसे बड़ी सम्पत्ति मानकर उस पर पूरा ध्यान देने का संकल्प किया। अन्त में सभी ने निम्न गीत के साथ आज की गोष्ठी को समाप्त किया;—

घर हो तीर्थ

कैसा बदल गया है दुनियाँ का कारखाना।
हर चीज में नुमायश हर चीज में दिखावा॥
पूजा नुमायशी है, सेवा दिखावटी है॥
ईश्वर के साथ छल है, इस छल का क्या ठिकाना?
घर में हो घुप अन्धेरा, मन्दिर में रोशनी हो।
ऐ मेरी प्यारी सखियो! ऐसा गजब न ढाना॥
घर का दिया जलाकर; मन्दिर में तुम जलाना॥ १

सासु, ननद, जिठानी हैं पूज्य प्यारी सखियो!
नित चरण उनके छूकर आशीष पाओ उनकी
पति ही तुम्हारा ईश्वर उसको ही सखि रिझाओ।
शुचि शीलता विनय से पग-धूलि शिर चढ़ाना॥ घर०

बूढ़ी तुम्हारी सासू, सब देवियों की देवी।
बस सरग ही समझना, है स्वर्ग की नसैनी॥
बाहर से आओ घर में; तो पैर उसके पूजो।
जब जाओ घर से बाहर, तो लो दुआएँ उसकी॥ घर०

बच्चे हैं जितने घर में, वे सब बिहारी जी हैं।
सब हैं अवध-बिहारी मूरत वे कृष्ण की हैं॥
मेले इन्हें दिखाओ जलसों में साथ लाओ।
यह ब्रज से और अवध से, आवाजें आ रही हैं॥ घर०

घर है तुम्हारा मन्दिर, सब तीर्थों से बढ़कर।
दुनियाँ का कोई तीरथ, इसके नहीं बराबर।
प्रयाग और काशी गङ्गा, हो या कि जमना।
सब हैं इसी के अन्दर कोई नहीं है बाहर॥
प्यारी सुनो ऐ सखियो! है बात बहुत सच्ची।
गर यात्रा है करनी कीजे यहीं से बढ़कर॥
घर में दिया जलाकर मन्दिर में फिर जलाना॥ ५

६

शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्

ईश-स्तवन

पितु-मातु सहायक स्वामि सखा, तुम ही एक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और अधार नहीं, तिनके तुमहीं रखवारे हो ॥
सब भाँति सदा सुखदायक हो, दुख दुर्गुण नाशन हारे हो।
प्रतिपाल करो सिगरे जग को अतिशय करुणा उर धारे हो॥
भुलि हैं हमहीं तुमको तुमतो, हमरी सुधि नाहिं विसारे हो।
उपकारन को कछु अन्त नहीं छिन ही छिन जो विस्तारे हो॥
महाराज ! महा महिमा तुम्हरी, समुझे विरले बुधवारे हो॥
शुभ शान्ति-निकेतन प्रेमनिधे मन-मन्दिर के उजियारे हो॥
एहि जीवन के तुम जीवन हो इन प्राणन के तुम प्यारे हो।
तुमसौं प्रभु पाय 'प्रताप हरी' केहि के अब और सहारे हो॥

आज की संगोष्ठी बहिन मनोरमा के यहाँ थी। उपर्युक्त गीत गायन के पश्चात् सरला जी ने 'सन्तान निर्माण कला'के क्रम को बढाते हुए बताया कि 'सन्तान-निर्माण और पारिवारिक सुख शान्ति के लिये माता-पिता अथवा पति-पत्नी और परिवार के सभी सदस्यों का स्वस्थ रहना अति आवश्यक है।

उन्होंने कहा श्रीराम माता कौशल्या जी, कृष्ण की माता देवकी और शिवाजी की माँ जीजाबाई बचपन से ही उनके शारीरिक विकास की ओर ध्यान देती थीं और साथ-साथ उनकी आत्मिक

शक्ति और मानसिक शक्ति को बढ़ाने का भी प्रयत्न करती थी। मानसिक और आत्मिक शक्ति से पूर्व शारीरिक शक्ति को बढ़ाने का उपाय करना चाहिए।

उपनिषदों में बल की महिमा गाई गई है। दुर्बल कुछ नहीं कर सकता। एक बलवान् मनुष्य आता है और वह सैंकड़ों को झुका देता है। शरीर स्वस्थ न हुआ, बलवान् न हुआ तो न हम उठ सकेंगे, न बैठ सकेंगे। अत्याचार के विरुद्ध लड़-भिड़ भी न सकेंगे, सत्संग द्वारा ज्ञानार्जन भी न कर सकेंगे। बल नहीं तो कुछ नहीं। इसलिये कहा गया है 'बलमुपास्त्व' बल की उपासना करो। श्रुति वचन है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः

दुर्बलों के लिये दासता और दुःख तैयार रहते हैं। यदि शरीर में शक्ति नहीं तो कुछ नहीं। इमारत की नींव गहरी और मजबूत होना चाहिए। चट्टानों पर खड़ी की गई इमारत गिर नहीं सकती। बालू पर खड़ी इमारत कब गिर जायगी, कुछ कह नहीं सकते। शरीर सब की नींव है।

शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्।

शरीर सब धर्मों (कर्त्तव्य कर्मों) का मुख्य साधन है। शरीर की उपेक्षा करना मूर्खता है, पाप है। वह समाज और ईश्वर के प्रति अपराध है। सन्ध्या के आरम्भ मे इन्द्रिय स्पर्श और मार्जन मन्त्रों का विनियोग इसी उद्देश्य से किया गया है। बिना मजबूत शरीर के हम न मातृ-पितृ ऋण चुका सकते हैं, न आचार्य ऋण न ऋषि-ऋण।

(१) व्यायाम

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये बालक-बालिकाओं, स्त्री, पुरुष सभी को शारीरिक श्रम या व्यायाम करना चाहिये। व्यायाम से शरीर स्वस्थ और सुन्दर बनता है। व्यायाम से मनुष्य आत्मरक्षा कर सकता है। खेल भी व्यायाम के अङ्ग हैं। खेलों से हमें कई अन्य गुणों के सीखने का अवसर मिल जाता है। खेल में बड़े और छोटेपन का भाव दूर हो जाता है। अनुशासन आता है। नियम में रहना आता है। अनासक्ति आती है। खेल निष्ठा है, खेल सत्यता है, खेल कष्ट विस्मृति है। खेलों द्वारा बच्चों को नैतिक शिक्षा दीजिये।

लिख चुके और अपने शिष्यों को उन्होंने चिकित्सा की सब विधिया बता दी तथा उन्हे अपने यहाँ से विदा कर दिया तो उन शिष्यो की परीक्षा के लिए वे एक बार उन चिकित्सकों के बाजार में पहुँचे और पक्षी का रूप धर कर ऊँची आवाज मे वृक्ष पर से बोले, कोऽरुक् कोऽरुक्, कोऽरुक्' रोगी कौन नहीं, रोगी कौन नही, कौन रोगी नही?

एक वैद्य ने पक्षी को देखकर और उसकी आवाज समझ कर कहा, जो मेरी दूकान का बना च्यवनप्राश प्रतिदिन सेवन करता है वह रोगी नही होता।' दूसरे ने कहा, 'मेरी फार्मेसी की चन्द्रप्रभा वटी का सेवन करने वाला कभी रोगी नही हो सकता। तीसरे ने कहा, 'जो हमारा बनाया हुआ लवण भास्कर खाता है, वह रोगी नहीं हो सकता।' चौथे ने अपनी सत शिलाजीत को स्वास्थ्य का कारण बताया। परन्तु चरक को किसी का उत्तर नही जँचा और वे निराश होकर जब जा रहे थे तो उन्होंने देखा नदी से नहा कर प्रसिद्ध वैद्य और उनके शिष्य वाग्भट्ट आ रहे हैं। यह देखकर वे सूने वृक्ष पर पहले की भाँति बोले 'कोऽरुक्, कोऽरुक्, कोऽरुक्' उन्होंने आंख उठा कर देखा और बोले हितभुक, मितभुक्, ऋतभुक्' अर्थात्‌जो हितकारी भोजन करता है, मात्रा में भोजन करता है और ईमानदारी की कमाई का भोजन करता है वह कभी रोगी नही हो सकता।

चरक सामने आये और कहा, तुमने ठीक समझा है। 'हित-भुक्' का अर्थ हुआ हितकारी भोजन करना चाहिए। ऐसा भोजन जो शरीर और मन के लिए हितकारी हो और यह उपयोगी भोजन भी 'मितभुक्' मात्रा मे खाना चाहिए। हम हर समय खाते रहते है। प्रातःकाल की चाय, फिर काफी, फिर चाय, फिर नाश्ता, फिर भोजन। यह ठीक नही। तीसरी बात यह है कि हितकारी भोजन मात्रा में तो हो ही। वह 'ऋतभुक्' ईमानदारी की कमाई का होना चाहिए। पाप के अन्न से आत्मा का पतन होता है। गिरी हुई आत्मा वाले मनुष्य का सिर कभी ऊँचा नहीं होता। उसका भोजन पचता नहीं। चिन्तायें उसे खाती रहती हैं। इसलिये अपने और अपने बच्चो

के जीवन को सुखी बनाने के लिये घर-घर में यह लिख कर टाँग दो—

हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्

हितकारी भोजन करो, मात्रा में भोजन करो और ईमानदारी की कमाई का भोजन करो। इसलिए मनोरमा तुमने जो अपना 'हैल्थ प्रोग्राम' बनाया है उसे इस प्रकार बना सकती हो—

१—प्रातःकाल उठना। प्रभु भक्ति एवं नित्यकर्म करना।

२—प्रातःकाल ताजे पानी से स्नान करना, व्यायाम करना, खुली हवा में साँस लेना।

३—स्वच्छ वस्त्र धारण कर संध्या हवन करना और उसके बाद शान्त मन से दिन भर के कार्यों का निर्धारण।

४—जलपान करना। जिसमें भिगोये हुए चने, सूखे मेवे और दूध आदि आवश्यकतानुसार लेना। दलिया, दही व मठ्ठा आदि भी ले सकते हैं।

५—ग्यारह बजे के आस-पास अपनी सुविधानुसार भोजन करना। भोजन में रोटी, चावल, दाल, सब्जी आदि के अतिरिक्त कच्ची तरकारियों का सलाद, गाजर, टमाटर आदि भी लिया जा सकता है।

६—शाम को तीसरे पहर कोई ऋतु का फल।

७—शाम को खेल-कूद, घूमना अपनी परिस्थितियों के अनुसार शारीरिक श्रम।

८—रात में रोटी या चावल और एक सब्जी और भात के साथ दाल लेनी चाहिए।

भोजनादि के विषय में बच्चों को निम्नलिखित बातों का अभ्यास कराना चाहिए।

१—भोजन खूब चबाकर खाना चाहिए। दाँत भगवान् ने भोजन चबाने के लिये ही दिये हैं। यदि तुम दाँत से चबाओगी नहीं तो दाँत का काम आँत को करना पड़ेगा। और वह कमजोर पड़

जायगी। चबाने के विषय में यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि दूध को खाना चाहिए और रोटी को पीना अर्थात् खूब चबाना। चबाने से भोजन में रस आता है। वह शीघ्र पचता है।

२—दिन और रात मे कम से कम आठ गिलास पानी पीना चाहिए। पानी का आचमन करना चाहिए।

३—अण्डे, मांस, शराब तथा अन्य नशीली वस्तुओं के सेवन से स्वयं तथा अन्यों को बचाना चाहिए।

"यह सब तो अत्युत्तम, पर आज तो देरी से उठना ही एक फैशन ऐसा बन गया है। अतः प्रातः जागरण के महत्व पर कुछ और प्रकाश डालिए, सरला दीदी!"—मनोरमा ने जिज्ञासा की।

सरला बहिन ने अपने कथन को जारी रखते हुए बताया कि प्रातः ४-४॥ बजे का उठना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यदि तुम आकर्षक, स्वस्थ और दीर्घजीवी होना चाहती हो, अपने हृदय को वसन्त कालीन वायु प्रवाह की तरह आनन्दोल्लास से परिपूर्ण करना चाहती हो, अपनी धमनियों में झरझर शब्द करती हुई प्रवाहित होने वाली छोटी नदी की धारा की भाँति स्वच्छ धारा प्रवाहित करने की अभिलाषा रखती हो, आयु को बढ़ाने वाली पुष्प सौरभ से परिपूर्ण प्रातःकालीन मन्द पवन सेवन करना चाहती हो तो खूब तड़के शय्या त्याग करने का अभ्यास करो। वेद में लिखा हुआ है। 'उद्यन्तसूर्यं इव सुप्तां द्विपतांवर्च आददे।'

सूर्योदय से पूर्व और ऊषादेवी के आने से पूर्व उठना आवश्यक है। ऋग्वेद के १२३ वें ऊषा सूक्त के एक मन्त्र में कहा गया है "देखो, ऊषा का विशाल रथ जुड़ गया। अजर और अमर देवता इसमें सवार हो आये हैं। ऊषा देवी देवताओं को साथ लेकर मनुष्य के रोगों को दूर करने के लिए आगे बढ़ रही है।" इसी सूक्त के दूसरे मन्त्र मे आया है यह ऊषा देवी प्रभात की पहली ज्योति के साथ किरणों के रथ पर आरूढ़ होकर आगे बढ़ती है तो अपने साथ चार वस्तुएँ लेकर चलती है, उन्हें बाँटती हुई चलती है। परन्तु देती है, उन्हें जो

नित्यक्रिया से निवृत्त होकर ताजा हवा में व्यायाम, भ्रमण या दौडना स्वास्थ्य के लिए, शरीर के लिए, स्फूर्ति के लिए और जीवन के लिए उपयोगी एव आवश्यक है। ताजा हवा में रक्त साफ करने वाला आक्सिजन ही नही रहता, परन्तु चुम्बकीय तत्व भी विद्यमान रहते है, जो हमारे अन्तर्मन को अपनी आकर्षण शक्ति से परिपूर्ण कर देते हैं। हमारा शरीर बिजली की बैट्री के सेल की तरह है। यदि हम इसे बिना चार्ज किए प्रयोग मे लायेंगे तो यह निश्चय है कि इसकी कार्य शक्ति (पावर) समाप्त हो जायेगी। अत: अपने स्वास्थ्य को उत्तम बनाने के लिए प्रातःकाल उठकर खुली हवा मे या स्वच्छ वायु में गहरी सास लेना सीखो। हमें यह भूलना नही है कि अपने बच्चों में स्वास्थ्य-प्रेम जगाने के लिये, उन्हे जीवन जीने की कला सिखाने के लिये हमें स्वयं इन नियमों का पालन करना होगा।

गहरी श्वास का महत्व

मनोरमा ने पूछा—बहन गहरी सांस लेने की क्या विधि है ? सरला बहन ने कहा "यह गहरी सास लेना भी एक कला है। इसका भी तुमको अभ्यास करना होगा। इसके आरम्भ के लिये तुम किसी खुली खिड़की के सामने अपनी ठोडी को जरा ऊँचाकर सीधी खडी हो जाओ और धीरे-धीरे नाक से वायु को भीतर ले जाओ। फेफड़े के नीचे के हिस्से को भी ऊपर के हिस्से के समान भर लो और वायु को जितनी सामर्थ्य और इच्छा हो उतनी देर तक भीतर रखो और फिर धीरे-धीरे उसे बाहर निकाल दो। जबर्दस्ती सांस न रोकना चाहिए। ऐसा करते हुए अपनी आंखें बन्द कर लेनी चाहिए तथा अपने मनमें 'ओं भू', ओ भुव' ओं स्वः ओं मह. ओं जनः ओ तप. ओं सत्यम्' इस मत्र का पाठ करते हुए स्वास्थ्य, सौन्दर्य तथा अन्य उत्तम भावों का हृदय मे संचार करना चाहिए। हमें सोचना चाहिए कि वायु की पवित्र धारा के साथ हममे शक्ति, उत्साह, स्फूर्ति एव जीवन का प्रवेश हो रहा है। इस प्रकार हमारे रक्त की प्रत्येक धारा चुम्बकीय शक्ति

से भर उठेगी और इसमें आकर्षण शक्ति की निरन्तर वृद्धि हो जाएगी।

सरला बहन ने कहा—मनोरमा, तुमने अपने हैल्थ प्रोग्राम में जो गर्म पानी से स्नान लिखा है, यह ठीक नहीं। शरीर को नहाने से पूर्व हथेली से खूब-रगड़ लेना चाहिए। हथेली को इस प्रकार रगड़ना चाहिए कि वह नीचे से ऊपर को जाये और फिर शीतल ताज़े पानी से रगड़कर कर नहाना चाहिए।

साबुन एवं क्रीम आदि का उपयोग न कीजिये

प्रतिदिन साबुन लगाना हानिकारक है। प्रायः साबुनों में ऐसे रासायनिक पदार्थ होते हैं, जिनसे खाल में खराबी आ जाती है। शरीर को अच्छी तरह रगड़ कर नहाने से पूरी सफाई हो जाती है। चेहरे मर्कोलाइज्ड वैक्स आदि लगाना भी उचित नहीं। यह ठीक है कि आज के युवक और युवतियाँ सुन्दर बनने के लिए क्रीम, स्नो, पाउडर और अन्य ऐसी वस्तुओं का व्यवहार करते हैं, परन्तु इनसे सौन्दर्य की वृद्धि के स्थान पर सौन्दर्य में एक अस्वाभाविक रूखापन आ जाता है। मनोरमा, स्वास्थ्य का अर्थ केवल रोगों से बचे रहना नहीं है बल्कि शरीर को इस अवस्था में रखना है कि उसकी सभी शक्तियाँ पूर्णरूप से पुष्ट और जाग्रत हों।

इस प्रकार स्वास्थ्य के लिए प्रातःकाल उठना, शौचादि से निवृत्त हो स्नान करके व्यायाम और सन्ध्या-वन्दना आदि करना चाहिए। उसके बाद नियमित रूप से जलपान भोजनादि से शरीर स्वस्थ बनता है। स्वस्थ माता, स्वस्थ बालक-बालिकायें राष्ट्र को अर्पित कर सकती हैं।

उत्तम स्वास्थ्य सदाचार का मूल है। अतः बालक-बालिकाओ में स्वास्थ्य प्रेम जगाना सन्तान निर्माण कला का एक प्रमुख अङ्ग है।

"शक्ति सञ्चय में स्वच्छता का भी तो बड़ा महत्वपूर्ण स्थानहै" कमलेश ने जिज्ञासा की।

"निस्सन्देह" सरला जी ने समाधान करते हुए कहा—"बहिन कमलेश जी ने बड़े महत्व की बात कही है। शारीरिक और आत्मिक शक्ति के लिए शरीर की स्वच्छता, आवास, भोजन तथा अन्य वस्तुओं की स्वच्छता, मानसिक निर्मलता और आत्मिक पवित्रता के साथ ही आजीविका की शुद्धता परमावश्यक है। पर समय अधिक हो जाने से इस पर आगामी गोष्ठी में विचार होगा। अब निम्न गीत के साथ हम आज की गोष्ठी को विराम देंगी—

शिव-सङ्कल्प

हम आर्य नारियाँ अब कुछ करके दिखायेंगी।
पुरुषार्थ त्याग द्वारा निज बिगड़ी बनायेंगी॥१
अज्ञान-कीच में जो नारी फँसी हुई हैं।
देकर सुनीति-शिक्षा सन्मार्ग सुझायेंगी॥१
सन्तानें श्रेष्ठ सृजना है मुख्य कार्य अपना।
बन स्वस्थ, वीरता से हम उनको सजायेंगी॥२
निज शील शिष्टता से सेवा मधुर वचन से—
परिजन पड़ौसियों के हिय-पुष्प खिलायेंगी॥३
अंग्रेजी सभ्यता के विकराल जाल में फँस।
मर्याद, धर्म-गौरव अपना न गँवायेंगी॥४
मझधार में पड़ी है भारत स्वदेश नौका।
बन कर्णधार उसको अब पार लगायेंगी॥५
अज्ञान के तिमिर में बहनें फँसी हुई हैं।
विद्या 'प्रकाश' करके सन्मार्ग दिखायेंगी॥६

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति

आज 'सखी वार्ता' की सातवीं बैठक थी । निम्न गीत से बहिन सरला जी ने इसका शुभारम्भ किया—

वैदिक नारी की विनय

जगदीश हमें यह वर देना, हम ऐसी नारी बन जावें।
करती रहें सन्ध्या, यज्ञ, हवन, पति आज्ञाकारी बन जावें ।।
पति नेत्रहीन जिन जान लई, मन में ये प्रतिज्ञा ठान लई ।
आंखों में पट्टी बांध लई, माता गांधारी बन जावें ।। १
चल दिये अवध तज रघुराई, सीता भी सङ्ग वन को धाई।
ना लङ्कपति से दहलाई, वो जनक दुलारी बन जावें ।। २
झांसी की लक्ष्मीबाई थी, गोरों से कीनी लड़ाई थी ।
रण अन्दर तेग चलाई थी, वो तेग दुधारी बन जावें ।। ३
हरिश्चन्द्र चले तज रजधानी, बिक गये जाय तीनों प्राणी ।
बन गई टहलनी पटरानी, वह तारा प्यारी बन जावें ।। ४
जहाँ जन्मे दयानन्द स्वामी, लेखराम, श्रद्धानन्द बलिदानी।
"राघव" विनती अन्तरयामी, ऐसी महतारी बन जावें ।। ५

विगत गोष्ठी में कमलेश बहिन की जिज्ञासा के सन्दर्भ में 'शरद पूनम' की स्वच्छ चाँदनी का ध्यान दिलाते हुए सरला बहिन ने अपनी सखियों को कहा—'जो प्रभु इतना सुन्दर इतना पवित्र और इतना आकर्षक है तो उसे प्रसन्न और खुश करने के लिए हमें भी स्वच्छ, सुन्दर और निर्मल बनने की आवश्यकता है ।

शुद्धता के लिए हमें बहुत खर्च की भी तो आवश्यकता नहीं। बस, हमें इतना ध्यान रखने की आवश्यकता है कि हम जहाँ रहते हैं, जहाँ जाते हैं, जहाँ देखते हैं वहाँ जो वस्तु अच्छी न लगे उसको सुन्दर बनाने का प्रयत्न करें। दूसरों को शुद्ध बनाने से पूर्व हमें विशेषकर महिलाओं को अपना तथा अपने बच्चों का शरीर तथा घर साफ सुथरा करना होगा।

'अद्भिः गात्राणि शुध्यन्ति' जल से शरीर शुद्ध होता है। अतः हमें स्वयं तथा बच्चों को प्रतिदिन नहाने की आदत डालनी चाहिए। नहाने के समय शरीर के प्रत्येक अङ्ग को साफ रखने का ध्यान रखना चाहिए। नहाने के साथ-साथ दांत, नाक आंख आदि की सफाई भी आवश्यक है। हमारा सिर यदि साफ नहीं होगा तो 'जूं' उसमें पड़ जायगी। एक जूं की आयु तीन चार सप्ताह तक की होती है, इस काल में वह सौ अण्डे दे देती है, जिन्हें लीख कहते हैं। इन लीखों को एक से दूसरे तक पहुँचते हुए देर नहीं लगती। बच्चे और बच्चियां खुजा-खुजा कर तङ्ग हो जाते हैं। जिनके सिर में जूं पड़ गई हों उन्हें गरम पानी से सिर साबुन से धोकर 'पैरेफीन आइल' या किसी जूं नाशक वस्तु से धो देना चाहिए। पतली कंघी से उन्हें निकाल भी देना चाहिए। ये कपड़ों में भी आकर बहुत परेशान करती हैं। उन्हें कपड़ों को धोकर गर्म लोहा करने से दूर किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त दांतों पर भी ध्यान रखना आवश्यक है। दांत दो प्रकार के होते हैं—दूध के दांत और पक्के दांत। छः सात मास से दूध के दांत निकलने प्रारम्भ हो जाते हैं। उस समय बच्चों का ध्यान रखना माता का कर्तव्य है। यह सात-आठ वर्ष तक रहते हैं।

दांत के ठीक न होने से पाचन शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

दांतों की भांति ही आंखों की स्वच्छता भी बड़ी आवश्यक है। प्रातः मुँह में जल भर कर, आँखों को खोलकर शीतल जल के छींटे देना, समय-समय पर आँखों में उत्तम अंजन लगाना भी उप-

योगी है। पाचन ठीक न होने से पेट साफ नहीं होता, और बालक को कब्ज की शिकायत रहती है। पेट की गन्दी सड़ी हवा का हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। माता को चाहिए कि बचपन में उसे ठीक समय पर शौच जाने का अभ्यास करावे। पेट ठीक रखने और शौच ठीक समय पर कराने के लिए उसे जब से वह दूध पीना प्रारम्भ करे ठीक समय पर नियत मात्रा में भोजन की भी आदत डालनी चाहिये। पेट के कृमि और अन्य रोगों को दूर करने के लिए स्वास्थ्य के नियमों के साथ योग्य चिकित्सक से भी सहायता लेनी चाहिए। किन्तु बालकों को औषधि का आदी बना देना और विविध इञ्जैक्शन देना उन्हें सदैव के लिये रोगी बना देना है।

३—निद्रा

वालकों को ठीक से सोने की भी आदत डालनी चाहिए, इससे बड़ा लाभ होता है। इस प्रकार सरला बहन ने शारीरिक स्वच्छता के विषय में विशेष रूप से चर्चा की और बतलाया कि स्वस्थ और स्वच्छ शरीर में स्वच्छ और स्वस्थ आत्मा या मन रह सकता है।

उन्होंने कहा भोजनादि में भी स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए। भोजन साफ सुथरे पात्रों में बने। साफ सुथरे कपड़े पहनने वाले बनायें,स्नान ग्रह भी साफ सुथरा हो। आज तो यह हालत हो गई है जहाँ भोजन बनता है, वहीं बच्चा पायखाना कर रहा है, उस पर मक्खी भिनभिना रही हैं, माँ कपड़े से पोंछकर फेंक कर या वैसे ही उस बच्चे को छोड़ कर काम में लगी रहती है। यह चीज ठीक नहीं। भोजन करने से पहले हाथ पैर धोना चाहिए। रसोई घर देव मन्दिर के समान पवित्र होना चाहिए।

४—व्यवस्था

स्वच्छता का व्यवस्था से भी बहुत अधिक सम्बन्ध है। घर की स्त्रियों का बहुत अधिक समय चीजों को खोजने में चला जाता है। चाभी, दियासलाई, जूता आदि इधर-उधर रखने से बड़ी कठिनाई होती है। पूज्य आनन्द स्वामीजी महाराज ने अपने साथ घटी

एक घटना सुनाई थी। दिल्ली के करोल बाग में एक सज्जन उन्हें रात को दूध पिलाने अपने घर में ले गये। घर में जाकर बैठे ही थे कि बिजली फेल हो गई। अन्धकार हो गया। उन्होंने पहले बिजली विभाग को बुरा-भला कहना प्रारम्भ किया और फिर इसी क्रम में वे सज्जन लगे सरकार को कोसने। पूज्य स्वामी जी ने कहा "राज्य को कोसने से कुछ बनेगा नहीं, आपके घर में कोई मोमबत्ती आदि होगी उसे जला लीजिए काम चल जायगा।" तब उन्होंने बच्चे की माँ को पुकारा और मोमबत्ती तथा दियासलाई माँगी। दियासलाई और मोमबत्ती की खोज की गई। पर वे नहीं मिली तो एक सिगरेट पीने वाले से माँगी। तीलियाँ जला-जला कर मोमबत्ती की खोज शुरू हुई। लेकिन यहाँ तक पहुँची कि तीलियाँ खत्म होने लगी। दियासलाई वाले ने कहा 'तीलियाँ जरा सँभाल कर खर्च कीजिए, नहीं तो ये भी समाप्त हो जायेंगी और आप अधिक कठिनाई में पड़ जायेंगे।" इस भाग दौड़ में बिजली आ गई। वे सज्जन बैठे और बोले—इस राज्य का सारा प्रबन्ध ही खराब है। जिस विभाग को देखो वहीं अव्यवस्था है। कितना समय इन लोगों ने नष्ट किया।

स्वामी जी महाराज ने आलोचना सुनकर हँसते हुए कहा "राज्य का प्रबन्ध अच्छा है या बुरा परन्तु तुम अपने घर का प्रबन्ध तो देखो न दीपशलाका रखने का ठिकाना है, न मोमबत्ती रखने का स्थान और कोसा जाता है राज्य को? राज्य क्या तुम्हारे घर का भी प्रबन्ध करेगा? यही हाल प्रायः सभी घरों का होता है। हमें इसे सुधारना चाहिए। स्वच्छता और व्यवस्था घर के लिए आवश्यक हैं। और शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति में इनका बड़ा महत्त्व है।

भारती ने सरला बहन की बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—बहन जी, सचमुच सरकार को कोसने की हमारी आदत ही बन गई है। अगर हम स्वच्छता और व्यवस्था की बातें स्वयं अपने स्वभाव में ले आयें तो हमारी सरकार को भी इससे सहयोग मिलेगा। गाड़ी

में यात्रा करते हुए हम लिखा देखती हैं 'थूको मत' लेकिन डिब्बे में थूकना तो 'हम सभी का अधिकार सा हो गया है।' दियासलाई और बीड़ियों के टुकड़े भी बाहर न फेंककर सब अन्दर ही फेंकते हैं। स्त्रियां बच्चों को पायखाना करवा कर वहीं फेंक देती हैं। रेलवे की ओर से बड़े-बड़े स्टेशनों पर सफाई के लिए महतरों का प्रबन्ध रहता है। लेकिन उन्हें बुलाकर डिब्बा साफ करवाने की आदत हम लोगों में नहीं है। साथ-साथ यह भी सोचना चाहिए कि वे बेचारे कहाँ तक साफ करें? अन्त में तो हमें अपनी आदतों को ही सुधारना होगा। अनेक पुरुष बीड़ी सिगरेट पीकर उसका गन्दा धुँआ रेल की तरह सारे डिब्बे में फैलाते हैं और वातावरण को अस्वच्छ करते हैं।

५—अनुशासन

कमलेश ने भारती की बात का समर्थन करते हुए कहा—'हमारी नसों में अनुशासन कहाँ? जहाँ बैठे वहीं थूक दिया, वहीं खाकर जूठन डाल दी। किसी पार्क में गये तो वहाँ फूलों पर धावा बोल दिया—खुले आम या चोरी से :'

घर पर और सब चीजों की ओर तो हम कभी २ सफाई का ध्यान भी रखते हैं, परन्तु रसोईघर, स्नानघर, पेशाबघर और पायखाने की सफाई की बात तो सोची ही नहीं जाती।

तीसरे दर्जे में हम वहीं खाकर हाथमुँह धोना, वहीं थूकना, वहीं नाक साफ करना, और वहीं बच्चों की खुली संडास स्थापित करना अपना अधिकार मानते हैं। सड़क पर चलते खाँसी आई तो झट बीच रास्ते पर थूक दिया। क्या हम कभी उन भाई-बहनों के विषय में सोचते हैं, जो नंगे पैर सड़क पर चलते हैं? दूकानदार दुकान साफ कर लेते हैं पर उसका कूड़ा बिना किसी रहम के सड़क पर फेंक देते हैं। विद्यालयों, कचहरियों कार्यालयों के दरवाजों और दीवारों को हम पान की पीक से रङ्ग देते हैं। घर के बड़े-बूढ़े अपने छोटे बच्चों को जो आँगन में इधर-उधर नंगे पैर और शरीर दौड़ते रहते हैं, उनकी परवाह किये बिना अपनी चारपाई से थूकते रहते

है। एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी की आँख बचाकर दूसरे के घर के सामने सड़क पर अपने बच्चों से पाखाना करवा कर अपनी स्वच्छता की ओर ध्यान दे लेता है तो दूसरा भी उसकी ओर वही तरीका अपनाकर उसे भी नहीं छोड़ता। पर दोनों की आत्मा को अपनी-अपनी सफाई का सन्तोष होता है। क्या वे कभी यह भी सोचते हैं कि इस गन्दगी से दूषित होने वाले वातावरण का प्रभाव हम पर भी पड़ेगा?

हमारे घर की स्त्रियाँ तरकारी की छीलन, बच्चे का पाखाना पोंछकर गन्दा कपड़ा, कूड़ा करकट बिना किसी हिचक के घर की खिड़की से सड़क पर बिना देखे फेंकती हैं। सड़क पर जाने वाले आदमी की आँख सिर पर चोट लगने और कपड़े मैले होने का उन्हें ध्यान नहीं होता। रेलवे स्टेशन, प्लेटफार्म या अन्य सार्वजनिक स्थानों पर फेंके हुए केले या नारङ्गी के छिलके कितनों की हड्डियाँ तोड़ देते हैं।

कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद एक बार वायसराय से मिलने जा रहे थे। केले के छिलके पर पैर पड़ने से वे फिसलकर गिर पड़े, हाथ की हड्डी टूट गई। अस्पताल ले जाये गये। अभी कुछ दिन पूर्व एक लड़का अपनी बीमार माँ के लिए दवा ला रहा था। केले के छिलके पर पैर फिसल जाने से वह बुरी तरह घायल हो गया।

अन्त में आज की गोष्ठी को विराम देते हुए सरला जी ने कहा—"कमलेश बहिन ने स्वच्छता और अनुशासन के सम्बन्ध में कितनी महत्वपूर्ण बातें कही हैं। तो प्यारी सखियो! पारिवारिक जीवन की सुख शान्ति के लिए एक आदर्श माता को स्वच्छता, व्यवस्था और अनुशासन के सद्गुण अपने बालकों में आरम्भ से ही प्रतिष्ठित करने चाहिए। पर यहाँ एक बात आप सभी भली प्रकार समझ लें कि स्वच्छता और फैशन को एक ही मानना भयङ्कर भूल है। स्वच्छता जितनी आवश्यक और कल्याणकारिणी है, फैशन उतनी ही विनाश-कारी। इस सम्बन्ध में पं० राधेश्यामजी रामायणी की यह पंक्तियाँ हम सभी सखियों को सदा याद रखनी चाहिए—

श्रेष्ठ नारी के सच्चे आभूषण

क्या रक्खा है इन चमकदार, कटियों पटियो और झूमर में।
यह शीश-फूल सच्चा सिर का सिर झुके बड़ों के आदर में ॥
पतिधर्म श्रवण हो श्रवणों से, यह श्रवण-फूल अति उज्ज्वल हो।
माथे पर तेज की वेन्दी हो, आँखों में लाज का कज्जल हो ॥

शुद्धता नाक की हो बुलाक, दाँतों को चोव सफाई हो।
जम जाय जितेन्द्रियता का रंग यह गालों की अरुणाई हो ॥
बाजुओं का बाजू बन्द यही, बाजुओं में बस तैयारियाँ हों।
अँगुरी के मुँदरी और छल्ले अनगिनती दस्तकारियाँ हों ॥
जिन हाथों के प्यारे जेवर, चक्की, चर्खा, सिल बटना हैं।
उनके आगे क्या चीज भला, हथफूल, छन्न और कँगना हैं।

जो हाथ सेव्य बनकर घरके, घर को रोटियाँ खिलाते हैं।
पहुँचियाँ, पछेली, दस्ताने उनके आगे शर्माते हैं।
कण्ठी तो यही कण्ठ की है, बस कण्ठ में मिसरी घोली हो।
यह गले का सच्चा गुलूबन्द, सच्ची और मीठी बोली हो ॥
हो हृदय पै श्रद्धा का जुगनू, जड़वाँ-हमेल गम्भीरता की ॥
सत्यता मोतियों की माला, और चम्पाकली धीरता की ॥

पति-प्रेम का चन्दरसेनी हार [illegible] और जिगर पर हो।
पतिव्रत और ब्रह्मचर्य-[illegible] [illegible]ंधनी कमर में हो॥
पति-आज्ञा, [illegible] [illegible] शोभा पाँओं के।
सन्मा[illegible] [illegible] छुए कड़े हैं पाँओं
ल[illegible] [illegible] और चाँदी शोि[illegible]
[illegible] [illegible]ा स्वर्ग की ल[illegible]

यह हैं [illegible] शृङ्गार
होती है। [illegible]लहार

आत्मा यज्ञेन कल्पताम्

आज की सखि-सगोष्ठी पुनः मनोरमा के यहाँ हुई। आरम्भ में सभी सखियों ने मिलकर प्रभु विनय का यह गीत गाया—

वैदिक नारी की विनय

मैं निर्मल मन लिये भगवन्! तेरे गुण गाने आई हूँ।
हो ज्योतिर्मय पिता! तुमसे मैं ज्योति पाने आई हूँ ॥ टेक॥
हटे अज्ञान का परदा, समस्या, हल यह हो जाये।
इसी से शान्ति वेला में, इसे सुलझाने आई हूँ ॥ २ ॥
बहाकर अश्रु धारायें, मिटादे पाप तापों के,
करूँ मैं मार्जन अपना, इसे चमकाने आई हूँ ॥ ३ ॥
दो भक्ति-दान हे भगवन्! परम सुख-शान्ति के दाता।
रहूँ सम्पर्क में तेरे यही वर पाने आई हूँ ॥ ४ ॥
किये संसार में सबसे, सदा व्यवहार शुभ मैंने
सरलता अपने जीवन की तुम्हें दिखलाने आई हूँ ॥ ५ ॥

गीत की समाप्ति पर भारती ने कहा—सरला जी! आपने पीछे दो सगोष्ठियों में शरीर के बल और शरीर तथा घर बार की शुद्धि एवं स्वच्छता के महत्व पर तो बड़ा उत्तम प्रकाश डाला है, आज आत्मिक बल और आत्म शुद्धि के विषय में बताइये।

भारती के प्रश्न को सुन सरला जी ने हर्ष से पुलकित हो भारती सखी को हृदय से लगा लिया, वे बोलीं— 'सच मे भारतीजी

श्रेष्ठ नारी के सच्चे आभूषण

क्या रक्खा है इन चमकदार, कटियों पटियो और झूमर में ।
यह शीश-फूल सच्चा सिर का सिर झुके बड़ों के आदर में ।।
पतिधर्म श्रवण हो श्रवणों से, यह श्रवण-फूल अति उज्ज्वल हो।
माथे पर तेज की वेन्दी हो, आँखों में लाज का कज्जल हो ।।

शुद्धता नाक की हो बुलाक, दाँतों को चोव सफाई हो ।
जम जाय जितेन्द्रियता का रंग यह गालों की अरुणाई हो ।।
बाजुओं का बाजू बन्द यही, बाजुओं में बस तैयारियाँ हों ।
अँगुरी के मुँदरी और छल्ले अनगिनती दस्तकारियाँ हों ।।
जिन हाथों के प्यारे जेवर, चक्की, चर्खा, सिल वटन
उनके आगे क्या चीज भला, हथफूल, छन्न और

जो हाथ सेव्य बनकर घरके, घर को रोटियाँ खिलाते हैं ।
पहुँचियाँ, पछेली, दस्ताने उनके आगे शर्माते हैं
कण्ठी तो यही कण्ठ की है, बस कण्ठ में मिसरी घोले
यह गले का सच्चा गुलूबन्द, सच्ची और मीठी
हो हृदय पै श्रद्धा का जुगनू, जड़वाँ-हमेल
सत्यता मोतियों की माला, और चम्प

पति-प्रेम का चन्दरसेनी हार, गर्दन पर और जिगर
पतिव्रत और ब्रह्मचर्य-व्रत की. निर्मल कौंधनी
पति-आज्ञा में जम जांय पांव, यह लच्छे
सन्मार्ग पै चलते रहें पाँव, यह
लज्जा की और शील की जब
तब देख-देख उस नारी

यह हैं नारी जाति के
होती है नित प्रकृति श

--

आत्मा यज्ञेन कल्पताम्

आज की सखि-संगोष्ठी पुनः मनोरमा के यहाँ हुई। आरम्भ में सभी सखियों ने मिलकर प्रभु विनय का यह गीत गाया —

वैदिक नारी की विनय

मैं निर्मल मन लिये भगवन्! तेरे गुण गाने आई हूँ।
हो ज्योतिर्मय पिता! तुमसे मैं ज्योति पाने आई हूँ ॥ टेक॥
हटे अज्ञान का परदा, समस्या, हल यह हो जाये।
इसी में शान्ति वेला में, इसे सुलझाने आई हूँ ॥ २ ॥
वहाकर अश्रु धारायें, मिटादे पाप तापों के,
करूँ मैं मार्जन अपना, इसे चमकाने आई हूँ ॥ ३ ॥
दो भक्ति-दान हे भगवन्! परम सुख-शान्ति के दाता।
रहूँ सम्पर्क में तेरे यही वर पाने आई हूँ ॥ ४ ॥
किये संसार में सबसे, सदा व्यवहार शुभ मैंने
सरलता अपने जीवन की तुम्हें दिखलाने आई हूँ ॥ ५ ॥

गीत की समाप्ति पर भारती ने कहा—सरला जी! आपने पीछे की संगोष्ठियों में शरीर के बल और शरीर तथा घर बार की शुद्धि एवं स्वच्छता के महत्व पर तो बड़ा उत्तम प्रकाश डाला है, आज आत्मिक बल और आत्म शुद्धि के विषय में बताइये।

भारती के प्रश्न को सुन सरला जी ने हर्ष से पुलकित हो भारती सखी को हृदय से लगा लिया, वे बोलीं— 'सच में भारतीजी

ने बहुत ही उत्तम जिज्ञासा की है। प्राय: मातायें बच्चों के शरीर और वस्त्रों को तो स्वच्छ रखने लगी हैं। कई बार तो मकानों की सजावट और बच्चों की बाहरी टीमटाम पर बहिनें आवश्यकता से बहुत अधिक व्यय भी करती हैं, जिससे शुद्धता और सादगी का मूल भाव नष्ट होकर फैशन और विलासिता ही हाथ लगती है। इसका एक ही कारण है—आत्म तत्व की उपेक्षा !

प्रिय सखियो ! शरीर और आत्मा के संयोग का नाम जीवन है। न हम शरीर की उपेक्षा कर सकते हैं और न आत्मा की अवज्ञा ही। अपनी सन्तानों को हमें शारीरिक बल प्राप्ति, भोजन शुद्धि, शरीर वस्त्रादि की स्वच्छता, व्यवस्था, और अनुशासन के संस्कार देने के साथ ही आत्मा के स्वरूप और सत्ता, आत्म दर्शन का मार्ग आत्मिक बल की प्राप्ति और आत्म विश्वास की महत्ता से भी भली-भाँति परिचित कराना होगा। तभी वे 'दिव्यजन' बनेंगी और तभी हम "मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्" वेद माँ की इस सूक्ति को चरितार्थ कर सकेंगी।

कठोपनिषद् की नचिकेता की कथा बताते हुए उन्होंने कहा कि यम ने नचिकेता को कहा—'तू हाथी-घोड़े संसार के ऐश्वर्य भोग विलास, प्रकृति पर शासन जो कुछ चाहे माँग, आत्मज्ञान बड़ा कठिन है, इसे मत माँग, नचिकेता आजकल का युवक न था, उसने कहा 'भौतिक वासनाएँ तो एक जन्म क्या, सैकड़ों जन्म लेते जांय तब भी नहीं मिट[illegible] आत्मतत्व के दर्शन कर लेने पर भौतिक जगत् स्वयं हा[illegible] ड़ा हो जाता है, भगवन् ! मुझे आत्मा का उपदेश दीजिए[illegible]

मैत्रेयी [illegible] निष [illegible] -५) में [illegible] नी

के भोग के पदार्थ मुझे मिल जाय तो क्या मेरी आत्मा को उससे शान्ति मिल जायगी या नहीं ? याज्ञवल्क्य ने कहा—'नेति नेति यथैव उपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यात्, अमृतत्वस्य नाशा.स्ति वित्तेन' संसार के भौतिक साधनो के मिलने से तुझे आत्मिक शांति प्राप्त नही होगी, हां उपकरण अर्थात् साधन संपन्न व्यक्तियों का जीवन जितना सुखी हो सकता है उतना सुखी तू जरूर हो जायगी। मैत्रेयी ने कहा—'येनाहं नामृतास्यां किमहं तेन कुर्यात्' जिस वस्तु को प्राप्त करने से मेरी आत्मा को चिरस्थायी शांति न मिले उसके पीछे दौड़कर मैं क्या करूंगी ? मुझे आत्मदर्शन का मार्ग बताइए।

मुण्डकोपनिषद् के एक सूत्र द्वारा आत्मदर्शन का मार्ग बतलाया गया है, वहां आया है, 'हृदामनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो' यह हृदय से, बुद्धि-से, मन से प्रकाशित होता है !

आत्मा की शक्ति को बढ़ाने के उपायों का उल्लेख करते हुए लिखा गया है:—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। अतः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषा। (मुण्डक ३-१-५)

अर्थात् यह आत्मा सत्य से, तपस्या से, सम्यक् ज्ञान से और ब्रह्मचर्य से प्राप्त होता है। यह प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्जगत् में शुभ्रवर्ण का विद्यमान है, इसे अपने हृदय को पाप रहित करने वाले योगी देख सकते हैं। सत्य, तपस्या, सम्यक् ज्ञान और ब्रह्मचर्य ये चार चट्टानें हैं, जो आत्मा की नींव और शक्ति को अचल और दृढ़ बनाती हैं। इन चट्टानों को आधार बनाकर जिस व्यक्ति, जिस समाज और जिस देश के जीवन रूपी भवन का निर्माण होगा वह अडिग होगा उसे किसी तरह का भूचाल अपने लक्ष्य की तरफ जाने से रोक नहीं सकेगा व्यक्ति तथा समाज का जीवन इन्हीं से बंधकर ठीक दिशा की तरफ जाएगा।

भौतिक जगत् में जो स्थान प्रकाश का है आध्यात्मिक जगत् में वही स्थान सत्य का है। प्रकाश को ढका जा सकता है पर वह भी

प्रकट हो जाता है। सत्य से ही आत्मा के दर्शन होते हैं। आत्म-अनात्म का झगड़ा, सत्यानृत का, अंधेरे उजाले का झगड़ा नित्य और शाश्वत है। प्रकाश तो भौतिक होने से बुझ सकता है, सत्य अभौतिक है, वह ढका जा सकता है, मिटाया नहीं जा सकता है।

इतिहास के पृष्ठों में हम आत्मविश्वास के अनेक उदाहरण देख सकते हैं। आल्पस पर्वत के एक किनारे नैपोलियन की सेनायें आगे बढ़ने के लिए खड़ी थीं। आल्पस की ऊँची चोटियाँ उसके मार्ग में बाधा बनकर खड़ी थीं जिन्हें तोड़ना साधारण मनुष्य का काम नहीं था। सेनापति ने घबराकर नैपोलियन से कहा 'महाराज! आल्पस पर्वत को पार करना असम्भव है। सेनाओं के लिए दूसरा मार्ग खोजिए।' नैपोलियन हँसा और बोला 'चलो चलें'। वह आगे बढ़ा। आल्पस ने मार्ग दिया और सेनायें आगे बढ़ीं। और यूरोप के कई देशों को एक छोटे कद वाले ने पराजित कर दिया। × ×

अटक नदी में बाढ़ आई हुई थी। उसके दूसरे किनारे पर पठानों की सेना लड़ने को उद्यत थी और इधर महाराज रणजीत-सिंह के जवान भारत की विजय की कामना मन में लिए मरने और मिटने को तत्पर थे। नदी को पार कर शत्रु पर धावा बोलना था। सेनापति ने महाराज रणजीतसिंह से आकर कहा 'नदी में तेज पानी बह रहा है। सेनाओं को पार करना किसी भी तरह सम्भव नहीं। महाराज रणजीतसिंह अपनी लम्बी सफेद दाढ़ी के बीच से एक निश्छल मुस्कराहट के साथ बोले 'असम्भव' शब्द मेरे कोष में नहीं है। चलो देखें।' यह कहकर वे अपने कपड़े और हथियार सिर पर बांधकर नदी में कूद पड़े। काव्य की भाषा में किसी ने कहा कि नदी सूख गई और सिक्खों की सेनायें पठानों को पराजित कर अपनी पताका पठानों के देश पर फहरा दी। × ×

स्वामी श्रद्धानन्द भारतीय स्वतन्त्रता के लिए किये जाने वाले आन्दोलन के एक जलूस का नेतृत्व कर रहे थे। जलूस आगे बढ़ रहा था। अंग्रेजों की शक्तिशाली सेना अपने घातक अस्त्रों से सुसज्जित

होकर सामने आकर खड़ी होगई और जलूस को तितर-बितर होने का आदेश दिया। स्वामी श्रद्धानन्द जलूस की व्यवस्था में पीछे रह गए। समाचार मिला तो आगे आए। और दूसरों को नही कहते 'आगे बढ़ो' स्वयं आगे आते हैं। वे दूसरों को सिर कटाने को नही कहते, स्वयं सिर कटाने को उद्यत रहते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द सच्चे वीर थे। वे आगे आए। बन्दूकों के सामने आकर बड़ी शक्ति से उन्होंने कहा 'जलूस आगे जायगा।' यदि तुम जलूस पर गोली चलाना चाहते हो तो पहले मेरी छाती पर गोली मारो।' इतना कहना था स्वामी श्रद्धानन्द और भारत माता की जय-जयकारों से वायुमण्डल गूँज उठा। अंग्रेजों की बन्दूकें झुक गईं। शारीरिक और पशुता की शक्ति के सामने आत्म-शक्ति की विजय हुई।

नरेना बहन ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा भारती, तुम्हें मैंने स्वामी दयानन्द का जीवन-चरित्र पढ़ने को दिया था। तुमने पढ़ा होगा ? महापुरुषों के जीवन-चरित्र हमारा मार्ग प्रदर्शन करते हैं। स्वामी दयानन्द की आत्मिक शक्ति के चमत्कारों से तो पुस्तक का प्रत्येक पन्ना भरा है। पत्थरों की वर्षा हो रही है, एक उज्ज्वल दिव्यात्मा दयानन्द के रूप में खड़ी होकर सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन कर रही है। पत्थरों की वर्षा से घबराकर श्रोता भागने लगते हैं, स्वामी दयानन्द के भक्त विचलित हो उनसे भाषण बन्द करने को कहते हैं परन्तु स्वामी दयानन्द मुस्कराते हुए उत्तर देते हैं 'यह पत्थरों की वर्षा नहीं, फूलों की वर्षा है। सत्य कष्टों में विकसित होता है। सत्य कठिनाइयों में विकसित होता है। सत्य कठिनाइयों में खिलता है, सत्य मुसीबतों में चमकता है। ये पत्थर, पत्थर नहीं फूल हैं।" सचमुच उन फूलों में खड़ा दिव्य दयानन्द अपने वीर, गम्भीर स्वर में असत्य का खण्डन करता चला जाता है। आत्म-विश्वास युक्त भाषण का प्रभाव पड़ता है। भागने को तैयार जनता रुक जाती है, भागे हुए लौट आते हैं और आत्म-शक्ति का चमत्कार दिखाई देने लगता है।

गीत की समाप्ति पर मनोरमा ने परिवार को सुखी बनाने के साधनों पर प्रकाश डालने की प्रार्थना सरला जी से की।

सरला बहिन ने बड़ी प्रसन्न मुद्रा में कहा—"प्रिय सखियों ! यों तो अभी तक की पहली ७ संगोष्ठियों में हम जो कुछ विचार कर चुकी हैं, वह सभी बातें पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने का ही आधार हैं। पर आज कुछ और बातों पर भी हम विचार करेंगी।

परनिन्दा के पाप से बचें

बचपन में एक कहानी सुनी थी। एक था विशाल काँच का महल। उसमें भटकता हुआ कहीं से एक कुत्ता घुस आया। हजारों काँच के टुकड़ों में अपनी शक्ल देख कर वह चौंका। उसने जिधर नजर डाली हजारों कुत्ते दिखाई दिये। उसने समझा कि ये सब कुत्ते उस पर टूट पड़ेंगे, और उसे मार डालेंगे। अपनी भी शान दिखाने के लिए वह भूकने लगा। उसे भी कुत्ते भूँकते हुए दिखाई दिये। उसकी ही आवाज की प्रतिध्वनि उसके ही कानों में आती। उसका दिल धड़कने लगा। वह और जोर से भूँका। सब कुत्ते अधिक जोर से भूँकते हुए दिखाई देने लगे। आखिर वह उन कुत्तों पर झपटा वे भी उस पर झपटे। बेचारा, जोर, शोर से उछला, कूदा, भूँका और चिल्लाया। अन्त में गश खाकर गिर पड़ा।

कुछ देर बाद दूसरा कुत्ता उस महल में आया। उसको भी हजारों कुत्ते दिखाई दिये। वह डरा नहीं, धीरे से अपनी दुम हिलाई। सभी कुत्तों की दुम हिलते दिखाई दी। वह खूब खुश हुआ और प्रसन्नता से उसकी ओर दुम हिलाते हुए आगे बढ़ने लगा। सभी कुत्ते उसकी ओर दुम हिलाते आगे बढ़े। वह प्रसन्नता से उछला कूदा। अपनी ही छाया से खेला, खुश हुआ और फिर पूँछ हिलाता हुआ चला गया।

जानती हो 'मनोरमा' आज हमारा पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है। पारस्परिक सद्भावना नष्ट हो गई है। भाई-बहन पिता-पुत्र, माता-बेटी आज एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी बन गये हैं। इसका

कारण क्या है ? हम भी उन कुत्तों की तरह दुनिया रूपी उस कांच के महल में घुस आये है । हमारे स्वभाव की छाया उस पर पड़ती है । 'आप भले तो जग भला' 'आप बुरे तो जग बुरा' हमारे परिवारों मे और समाज में निन्दा का दोप काफी दिखाई देता है। परिवार में प्रेम रखने के लिये पुरुषों की अपेक्षा हमारा कर्त्तव्य अधिक है और उसमे पहली बात निन्दा से बचने का है ।

कर्त्तव्य-भावना को जगायें

अपनी बात को बढाते हुए उन्होंने कहा कि परिवारों में साधारणतया प्रत्येक स्त्री यह अनुभव करती है कि जब मैं बहू थी तो सास अच्छी नही मिली और जब मैं सास बनी तो बहू अच्छी न मिली । जानती हो मधु, इसका कारण ? इसका सबसे मुख्य कारण अधिकार भावना है । अपनी इस अधिकार भावना की पूर्ति के साथ मनुष्य कर्त्तव्य-भावना को भुला ही देता है ।

मैं एक घटना तुम्हें बताती हूँ । एक अच्छे समृद्ध घराने के एक नवयुवक का विवाह हुआ । विवाह से पूर्व उस घर में बड़ा स्नेह था । भोजन के बाद सब इकट्ठे होते, गप्प लगते, रेडियो सुनते, दिन में साथ मिलकर खाते-पीते आनन्दमय वातावरण था । विवाह के बाद परिस्थिति बदली और वह नवयुवक अब परिवार के लोगों को छोड़ अपनी बीवी के घर मे चला जाता वहीं खाना खाता, रात बिताता, सबेरे बिना किसी से मिले-जुले वह अपने काम पर चला जाता धीरे-धीरे इस व्यवहार के परिणामस्वरूप ईर्ष्या, द्वेष, व्यङ्ग, कटाक्ष और खुला विरोध बढा । सास बहू से बुरा भला कहने लगी, बहू ने उसकी आलोचना प्रारम्भ की । वास्तव मे दोषी कौन था ? विचार करने पर पता चलेगा कि यदि वह स्त्री अपनी कर्त्तव्य-भावना को जगाकर अपने आनन्द में अपने पति के माता पिता और भाई बहनों को सम्मिलित कर लेने की प्रेरणा देती तो यह दुःखद क्रिया न होती । इन दोनों का यह कर्त्तव्य था कि वे भोजन रेडियो सुनने और वार्तालाप में घर के अन्य छोटे मोटे व

वालों का साथ देते तो परिवार में वैमनस्य न आता। यह काम और उत्तरदायित्व पुरुष की अपेक्षा स्त्री का अधिक है। क्योंकि वही घर की स्वामिनी हैं।

पारिवारिक सौमनस्य

पारिवारिक स्नेह के लिए संघर्ष से बचने के लिये मनोवैज्ञानिक कारण को हम स्त्रियों को समझ लेना चाहिए। बहुत बार सास अपनी हीन ग्रन्थी (इन्फिरियोरिटी कम्पलेक्स) के कारण आलोचना या विरोध करने लगती है। ऐसे समय उससे संघर्ष करने, चिढ़ाने, लड़ने के स्थान पर उसका उत्तर न देकर उसके साथ इतना अच्छा व्यवहार करना चाहिए कि उसे नाराज होने का अवसर ही न मिले। उदाहरण के लिए घर के कामकाज को सुचारु रूप से करने के कारण बहू की प्रशंसा होते देख यदि सास ईर्ष्या करती है तो बहू को उस सुष्ठुता का कारण अपनी सास को बताना चाहिए और श्रेय उसे ही देते रहना चाहिए। इससे कुछ बनता और बिगड़ता तो है नहीं। सास प्रसन्न भी हो जायगी।

सास को भी बहू की छोटी-छोटी भूलों की उपेक्षा करनी चाहिए। दाल तरकारी में नमक अधिक पड़ जाने, किसी वस्तु के गिर कर टूट जाने, किसी काम के समय पर न हो सकने पर बहू का अपमान न करना चाहिये। किसी भी अपराध के लिये सबके सामने उसे लज्जित करना उचित नहीं। बहू को सुघड़ और व्यवस्थित बनाना हो तो आलोचना या निन्दा से नहीं, सहानुभूति से बनाया जा सकता है।

परिवार के अन्य सदस्यों में भी प्रेम व सद्भावना आवश्यक है अथर्ववेद के ३-३०-१ मन्त्र में परस्पर प्रेम व्यवहार के लिए कहा है—

सहृदयं सामनस्यम विद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

इस मन्त्र में वेद भगवान् आदेश करते हैं 'हे मनुष्यो, एक चित्तता सहृदयता, एक मनस्कता, एक विचार द्वारा पारस्परिक प्रेम

को बढ़ाओ और एक दूसरे से ऐसा प्रेम करो जैसे गाय अपने नवजात बछड़े से करती है।"

प्रीति सम्पादन करने वालों को यह समझ लेना चाहिये कि प्रीति की रीति-नीति न्यारी है। जिनके दिल एक नहीं, जिनके चित्तों की भावनायें भिन्न-भिन्न है, उनमें प्रीति कैसे हो सकती है? प्रेम चित्त की सूक्ष्म भावनाओं में से एक है। जब चित्त धाराएँ विरुद्ध दिशाओं में बह रही हैं तब कैसे अनुराग हो सकता है? जब मन एक सा न सोचने हो तब आपस में सम्बन्ध कैसे हो? इन नियमों का समाज की भांति परिवार में भी पालन होना चाहिये। केवल पति-पत्नी तक ही परिवार नहीं, इनसे भी आगे परिवार है। अतः वेद कहता है, यदि तुम सुखी होना चाहते हो, परिवार को आनन्दित करना चाहते हो तो—

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्। —अथर्व ३-३०-२

पुत्र पिता के अनुकूल व्रत वाला हो, सन्तान का मन माता-पिता के मन के साथ मिला हो, पत्नी पति से शान्तिदायक मीठी वाणी बोले। संस्कृत के एक कवि ने ठीक ही कहा है—

यः प्रीणयेत् सुचरितैः पितरं स पुत्रः।
या भर्तुरेव हित मिच्छति सा कलत्रम्॥

अर्थात् जो अपने आचरण से पिता को प्रसन्न करे वही पुत्र है। और अपने पति की हित कामना करने वाली सच्ची पत्नी होती है।

इसी प्रकार भाई बहन और भाई बहन में भी प्रेम की अजस्र धारा बहनी आवश्यक है। वेद ने कहा है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

भाई-भाई से, बहन-बहन से और भाई बहन से द्वेष न करें। उनकी चाल और व्यवहार एक हो। भाई बहन का सम्बन्ध अनादि है, हृदय सहज है, सार्वभौम है। यह ही एक सम्बन्ध है जो निर्विकार, निष्काम और समानता पूर्ण है।

ऋतु प्रधान पर्व

वैदिक धर्म एवं संस्कृति पर्व प्रधान हैं। आर्य जाति में जितने पर्वों की संयोजना है, उतनी किसी में नहीं है। हमारे पर्व कई प्रकार के हैं। कुछ पर्व ऋतु परिवर्तन के आधार पर हैं। ऐसे पर्व प्रकृति माता के अखूट वरदानों को लेकर आते हैं—जैसे वसन्त। काका कालेलकर ने लिखा है 'वसन्त के उत्सव की सृष्टि शास्त्र-कारों और धर्माचार्यों की देन नहीं। इसे तो कवियों, गायकों तरुणों और रसिकों ने जन्म दिया है। कोयल ने उसे आमन्त्रण दिया है। फूलों ने उसका स्वागत किया है। वसन्त का मतलब है पक्षियों का गान, आम्र मञ्जरियों का सौरभ, शुभ्र आम्रों की विविधता और पवन की चंचलता। जब संयम, औचित्य और रस तीनों का संयोग होता है, तब सङ्गीत का प्रवाह चलता है। जीवन में भी अकेला संयम श्मशानवत् हो जायगा। अकेला औचित्य दयारूप हो जायगा और अकेला रस निर्जीव विलासिता में ही खप जाएगा। इन तीनों का संयोग ही जीवन है।" सचमुच वसन्त में प्रकृति हमें रस की बाढ़ प्रदान करती है। ऐसे समय संयम और औचित्य हमारी पूंजी होनी चाहिए।

हम देखते हैं कि पतझड़ के बाद ही ऋतुराज वसन्त वंशी बजाता आता है। मानो वह कहता है-"रात्रि के बाद दिन, अन्धकार के बाद प्रकाश, ग्रीष्म की शुष्कता के बाद वर्षा उसी प्रकार पतझड़ के पश्चात् वसन्त आता है। अतः जीवन में कभी निराश न बनो।" प्रकृति माँ इस प्रकार के पर्वों द्वारा जहाँ अपने इन सूक्ष्म सन्देशों की प्रेरणा करती है, वहाँ ऋतु अनुसार खान-पान, रहन-सहन आदि ऋतु-चर्या द्वारा स्वास्थ्य-सम्पादन का निर्देश भी कहती है।

जयन्ती उत्सव

दूसरे प्रकार के पर्व महापुरुषों, बलिदानी वीरों और राष्ट्र-निर्माताओं के जन्म दिवस, या बलिदान दिवस की पावन स्मृति लेकर आते हैं। रामनवमी, कृष्णाष्टमी, हनुमज्जयन्ती, ऋषि बोध पर्व आदि।

महापुरुषों और महात्माओं के पावन जीवन-संस्मरण हमे नवजीवन प्रदान करते हैं। वे ज्योति-स्तम्भ की तरह हमारा मार्ग दर्शन करते हैं और हमारे बुझे हुए आत्म तेज को दीप्तिमान करते है।

यज्ञोत्सव एवं राष्ट्रिय पर्व

दर्शेष्टि पौर्णमास्येष्टि, अमावस्येष्टि आदि कई पर्व विविध यज्ञों के महत्व और जीवन में उनकी व्यावहारिक उपयोगिता का सन्देश लेकर आते है, जबकि १५ अगस्त और २६ जनवरी के पर्व अपना राष्ट्रिय महत्व रखते हैं।

चार महा पर्व

वैदिक पर्वों की लम्बी शृङ्खला में चार महापर्व ऐसे हैं जो अपना सर्वाधिक महत्व रखते है। वे हैं—श्रावणी, विजयादशमी (दश-हरा), दीपावली तथा होली। यह चारों महापर्व बहु उद्देशीय हैं। राष्ट्रिय पर्व तो ये है ही, प्रकृति परिवर्तन, यज्ञोत्सव और जयन्तीपर्व या बलिदानोत्सव की विशेषता भी इनके साथ जुडी हैं।

श्रावणी महतो महान् राष्ट्रिय पर्व

'श्रावणी पर्व का राष्ट्रिय महत्व क्या है?' कमलेश का प्रश्न था। उत्तर में सरला जी ने बडी प्रसन्न मुद्रा में बताया कि किसी भी राष्ट्र के चार महा शत्रु हैं—(१) अज्ञान (२) अन्याय (३) अभाव (४) और पारस्परिक द्वेष-फूट-घृणा वैमनस्य। इन्हें चार ही महा शक्तियों द्वारा मिटाया जा सकता है—ज्ञानबल से अज्ञान को, बाहुबल (शक्ति) द्वारा अन्याय को, अर्थ-शक्ति से अभाव को और सङ्गठन शक्ति से वैर-विरोध को। हमारे चार महा पर्वों में से श्रावणी पर्व—राष्ट्र में ज्ञान-बल (सद्ज्ञान के प्रचार-प्रसार) द्वारा अज्ञान नाश 'विजयादशमी सैन्य बल द्वारा राष्ट्र में या राष्ट्र पर होने वाले अन्याय-नाश, दीपावली अर्थ शक्ति को बढ़ाकर राष्ट्र के अभाव-नाश तथा होली पर्व—सङ्गठन बल, एकता एवं राष्ट्रिय सद्भाव द्वारा वैर-विरोध-विनाश का सन्देश लेकर प्रतिवर्ष हमारे बीच मे आते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चारों ही महापर्व राष्ट्र-जीवन का प्राण हैं। किन्तु श्रावणी पर्व का महत्व और भी अधिक है, कारण राष्ट्र के उपर्युक्त चार शत्रुओं में अज्ञान सबसे बड़ा शत्रु है। अन्य तीनों अन्याय, अभाव, असङ्गठन या अयज्ञीय भावना तो अज्ञान के ही चेरे हैं, अज्ञान के साये में ही वे पलते हैं। सद्ज्ञान का आलोक जब राष्ट्र-जीवन में आता है तो बाहुबल, अर्थ बल और सङ्गठन बल स्वयं ही आ जाते हैं। सद्ज्ञान का प्रतिनिधि ब्राह्मण है। ब्राह्मण या पुरोहित जब घोष करता है—"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः" और सच में जब ब्राह्मण जागता है तो सारा राष्ट्र सुख की नींद सोता है, क्योंकि क्षत्रिय, वैश्य सभी तब अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। श्रावणी ब्राह्मण के इसी कर्त्तव्य का प्रबोधन करती है।

सद्ज्ञान का भण्डार है—वेद। वेद ईश्वरीय ज्ञान है, वेद प्रभु की कल्याणी वाणी है। तो श्रावणी पर्व पवित्र वेदों के सुनने-सुनाने का पर्व है। 'श्रवण' शब्द से ही श्रावणी बना है। अनेकों वैदिक ऋषि-महर्षियों ने वेदानुकूल सत्साहित्य, दर्शन-उपनिषद् आदि का निर्माण किया है, पवित्र वेदों और ऋषियों की दिव्य निधि की रक्षा करना ही 'रक्षा-बन्धन' और उसके स्वाध्याय एवं प्रचार का व्रत ग्रहण करना ही 'ऋषि तर्पण' है। यह सभी श्रावणी पर्व के अङ्ग हैं। कालान्तर में 'रक्षा-बन्धन' बहिन-भाई के निश्छल प्रेम का प्रतीक बन गया। यह पुण्य-परम्परा भी इस पावन पर्व का अङ्ग बन गई। और जब हैदराबाद में धर्म रक्षार्थ सत्याग्रह में आर्यवीरों ने बलिदान दिये, तब से उनकी पुण्य स्मृति को भी इसके साथ जोड़ लिया गया है।

अज्ञान का करिश्मा

"सरला जी! आपने तो श्रावणी पर्व की इतनी महिमा कही है, इसे तो हमारा देश बिलकुल भूला ही हुआ है।"—भारती ने कहा। इस पर सरला जी दीर्घ निश्वास लेते हुए बड़े कष्ट भरे स्वर में कहा—प्यारी सखियो। यह सब अज्ञान का करिश्मा है।
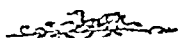
अज्ञान के जाल मे फंस हम अपने आत्म स्वरूप को ही भूल गये थे।

हम भूल गये थे कि हमारा नाम आर्य है, कि हमारे देश का नाम आर्यावर्त है। हम भूल गये थे कि ईश्वर एक है और कि उसका मुख्य और निज नाम'ओ३म्' है। अज्ञान के अंधेरे में हम अपना सनातन अभिवादन नमस्ते, एक गुरु मन्त्र गायत्री एक धर्मग्रन्थ वेद, एक धर्म-वैदिक धर्म--विश्व मानव की एकता के इन सभी सूत्रों को ही भूल गये। प्रभु का प्यारा मानव-समाज अज्ञान-जन्य मत-पन्थों मे फंस खण्ड-खण्ड होगया था। इसी क्रम में हम अपने पर्वों और त्योहारों के मनाने का प्रकार भी भूल गये थे। ऋषि दयानन्द ने इन्ही भूले हुए तत्त्वों और भूली हुई वैदिक राह को हमें फिर से बताया था।

श्रावणी के दिन विश्वगुरु ब्राह्मण आज द्वार-द्वार पर 'वलीवद्दो ग्जा०' आदि कहता फिरता है और एक-एक पैसे के लिये हाथ फैलाता है। विजयादशमी पर क्षत्रिय शराब पीने और भगवान् की मूक प्रजा--भैंसे-बकरों की गर्दन चाक करने में वीरत्व का प्रदर्शन करता है। जो तलवार कभी अन्यायी को शिरोच्छेदन करती थी, वह मांसखोरी का शौक पूरा करने में प्रयुक्त होती है। दीपावली आज जुआ खेल कर दिवाला निकालने के रूप में मनाई जाती है और प्रेम-सङ्गठन का पर्व होली आज वैर निकालने तथा सिर फुटौवल का त्योहार बन गया है। कहां तो भाभी और देवर का सम्बन्ध सीता और लक्ष्मण के आदर्श के रूप में हमारे सामने है और कहां होली के नाम पर उसको ऐसा सवनाश और घिनौना रूप दिया गया है। हा, हन्त !! ऋषि दयानन्द ने इसी उल्टी स्थिति को उलटकर उसका सुलटा और शुद्ध रूप हमें दिया था।

तो आओ सखियो, हम सभी इस घोर अज्ञान से जूझने का व्रत लें। अज्ञान-नाश का व्रत-यही श्रावणी-सन्देश है और श्रावणी पर्व का सर्वाधिक महत्त्व है।

"अच्छा, सरलाजी यह तो बताइये कि इन दस गोष्ठियों में आपने हमें जो यह सद्ज्ञान दिया, उसे स्वयं आपने कहाँ से प्राप्त किया"- शान्ताने जो अब तक की सभी गोष्ठियों में मौन ही रही थी, बड़े गद्-गद् भाव से प्रश्न किया।

इस प्रश्न पर सरला बहिन के नेत्रों में एक चमक सी आगई। अपने श्वसुर जी के चरणों में हार्दिक भावाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा—यह मेरे धर्मपिता—श्वसुर जी की कृपा का पुण्य-प्रसाद है। मैं जैसे ही विवाहित होकर श्वसुर-गृह पहुँची, उन्होंने प्रथम प्रस्ताव यही किया—देखो बेटी! घूँघट का दमघोटू और व्यर्थ ढकोसला यहाँ नहीं चलेगा। बाप-बेटी के बीच इसका क्या अर्थ? और देखो, तुम जानती ही हो हम वैदिक धर्मी हैं। तुम्हें प्रति सप्ताह अपनी सासु और घर के सभी सदस्यों सहित आर्यसमाज मन्दिर चलना है। घर में होने वाले दैनिक यज्ञ, सन्ध्योपासना और साय सत्सग में तुम भाग लो और वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय भी करो। कुछ दिन तुम यह सब हमारे कहने से करो और फिर यदि तुम्हारी आत्मा को वैदिक मंथ और उसकी शिक्षायें तथा वैदिक कर्मकाण्ड रुचिकर न लगे तो तुम बेशक छोड़ देना।"

"पर शान्ता जी!" सरला बहिन का कथन जारी था 'उस पावन रस का थोड़ा भी आस्वादन होने पर मेरा तो कायाकल्प ही होगया। कितनी देर से पहले मैं उठती थी, दिन में कई-कई बार चाय और सब कुछ अस्त-व्यस्त एवं अव्यवस्थित। पर उस वैदिक परिवार में सासु-श्वसुर का माता पिता से भी अधिक दुलार पति का सच्चा स्नेह और ननद-देवर आदि सभी का सुष्ठु व्यवहार पाकर मेरा जीवन तो धन्य होगया। आर्यसमाज के उत्सवों और समय २ पर अतिथि रूप मे आर्य विद्वानों के सदुपदेश और शङ्का-समाधान से अब सभी शङ्कायें निःशेष हो गई हैं। ईश-कृपा से जीवन जीने की कला जानकर उसका पूरा लाभ हम लोग ले रहे हैं।"

इस पर शान्ता ने कहा—बुरा न मानना सरला बहिन! आप तो कुछ विचित्र सी बात कह रही हैं। हमारे यहाँ तो सभी कहते हैं

आर्यसमाज तो नास्तिकों का टोला है, वह राम-कृष्ण साधु-ब्राह्मण
तीर्थ, पर्व-त्योहार श्राद्ध आदि किसीको नही मानता, फिर मैंने तो
य कई आर्यसमाज वालों को देखा है कि वे कुछ भी नही करते ।"
सरला जी, ने हँसी बिखरते हुए कहा—'प्रिय शान्ता जी, इसमें
ा मानने की बात कहा है ? आपका कहना सर्वथा ठीक ही है ।
हान् आर्यसमाज के सम्बन्ध में इस तरह की भ्रान्तियों के दो कारण
। एक तो वे भेड़िये और उल्लूक जिन्हें अंधेरा ही प्रिय है । अज्ञान
के अंधेरे में जो अनेकों अन्धविश्वासों और रूढ़ियों को धर्म बनाकर
लूटते-खाते थे, दूसरे वे तथाकथित आर्यसमाजी भी भ्रान्ति का कारण
हैं जो सिर्फ खण्डन के पीछे पड़े हैं, जिन्होंने असत्य को त्यागा तो पर
सत्य को धारण नही किया । मूर्ति-पूजा को छोड़कर जिन्होने वेदोक्त
पञ्चयज्ञों को नही अपनाया, धूर्तों की पूजा छोड़ दी, पर सच्चे साधुओं
और ब्राह्मणों से अपने घर के आङ्गन को पवित्र नहीं किया, सत्य-
नारायण कथादि के मिथ्या महात्म्यों को छोड़कर पवित्र वेदकथा को
परिवार में प्रतिष्ठित नही किया—वे सभी लोप लीलक तथाकथित
आर्यसमाजी, गण्डे ताबीज, ऊत-भूत, सैयद-मसानी, आक-ढाक के
घुमक्कड़, पौराणिक पाखण्डियों की भांति ही राष्ट्र-जीवन के शत्रु हैं ।
मेरे पतिदेव बताते हैं कि पहले हमारे परिवार में भी य ी
स्थिति थी । पर जबसे हमारे यहां मथुरा से प्रकाशित 'तपोभूमि' का
पवित्र प्रकाश आया, हमारे परिवार की काया ही पलट गई । अब
हमारे यहा दैनिक पञ्चयज्ञों के अतिरिक्त रामनवमी, कृष्णाष्टमी आदि
सभी पर्व और प्रायः सभी संस्कार मनाये जाते हैं । 'तपोभूमि' के
विशेषाङ्क – शुद्ध रामायण, शुद्ध कृष्णायन शुद्ध हनुमच्चरित, शुद्ध
महाभारत शुद्ध गीता, शुद्ध मनुस्मृति के पढ़ने से तो सारा ही भ्रान्ति
पटल स्वयं ही हट गया है । न जाने कितने जीवनों को इन पवित्र
ग्रन्थों से ज्योति और जीवन की राह मिली होगी । इन ग्रन्थों के पढ़ने
से स्पष्ट हो जाता है कि आर्यसमाज और एकमेव आर्यसमाज ही राम-
कृष्ण, साधु-ब्राह्मण आदि को मानता है । अन्य तो चूंकि उन्हें जानते
हो नही तब मानने की बात ही कहां रह जाती है ? पौराणिक

तायें असत्य, अविवेक, अन्धविश्वास और चमत्कार पर आधारित होने से राष्ट्र के घोर पतन का कारण रही हैं और रहेंगी। आर्यसमाज का आन्दोलन—'जय ज्ञान जय विवेक" का आन्दोलन है। उसका कहना है कि प्रत्येक चीज को मानो, पर विवेकपूर्वक, ज्ञानपूर्वक। आर्यसमाज का आधार सत्य, ऐतिहासिक तथ्य और विज्ञान है।

उक्त ग्रन्थों के पढ़ने से यह भी प्रकट हो जाता है कि महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज को किसी नये मत-पन्थके रूपमें नहीं चलाया। आर्यसमाज कोई सम्प्रदाय नहीं है। वह है मानव-निर्माण आन्दोलन या चरित्र निर्माण आन्दोलन। आज देश में चरित्रवान् मानव का ही हर क्षेत्र में अकाल है। आर्यसमाज ही इस अभाव की पूर्ति करेगा।

'तपोभूमि-परिवार' ने आर्यसमाज को उसके इसी रूप में प्रस्तुत करने का कार्य अपने हाथों में लिया है और वह भी सिर्फ कथनी में न होकर करनी में भी हो, इसीलिए 'तपोभूमि-परिवार' ने 'वैदिक परिवार निर्माण अभियान" आरम्भ किया है, जिसका उद्देश्य है वैदिक धर्म के विधेयात्मक कार्यक्रम – वैदिक कर्मकाण्ड को आचरण की वस्तु बनाकर एक-एक व्यक्ति का निर्माण हो। यह कार्य वैदिक परिवारों द्वारा ही हो सकेगा। सन्तानों को सु-सन्तान बनाने के कार्य को सर्वाधिक महत्व देना होगा। इस कार्य में पुरुषोंसे अधिक हम महिलाओं को अपना भाग पूरा करना है। इसके लिए पुरोहित संस्था को सजीव कर वैदिक मिश्नरियों की एक सेना ही खड़ी करनी होगी। इसी उद्देश्य से वेद मन्दिर (गुरुधाम) मथुरा का शुभारम्भ हो रहा है।

हर्ष का विषय है कि महान् आर्यसमाज के जीवन के सौ वर्ष पूरे होने जा रहे हैं। इस उपलक्ष्य में नवम्बर १९७५ में बम्बई में विराट् आयोजन होगा। आर्यवीरों के तप और बलिदान से शुद्धि विधवा विवाह, नारी शिक्षा, दलितोद्धार, (अछूतोद्धार), अनमेल विवाह-निषेध तथा अनेकों कुरीतियों के निवारण के आर्यसमाज के कार्यक्रम को आज सभी ने अपना लिया है। हां, इन सुधारों ने भी

त दिशायें ले ली है, उनका भी सुधार होना है। पर सुधारो का
ार है—आत्म सुधार।

आत्म-सुधार, वह वैदिक आस्तिकता और यज्ञमय सदाचारी
जीवन से आवेगा। वेदमन्दिर योजनाका यही उद्देश्य है। कुछ वैदिक
विद्वान, कुछ तपोधन महात्मा और कुछ तरुण साधक इस ओर जुटे
है। शिविरो के आयोजनओर पारिवारिक गोष्ठियांभी उसी का अङ्गहै
विश्वास है वैदिक सुप्रभात होगा और अवश्य होगा। महर्षि का स्वप्न
पूरा होगा ही। तब मेरा प्यारा भारत फिर एक बार विश्वगुरु बनेगा
और ऋषि मनु की यह उक्ति पुन: चरितार्थ होगी—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्व स्व चरित्र शिक्षेरन
पृथिव्या सर्व मानवा:' प्रभु ऐसी कृपा करेंगी ही।"—कहते कहते
सरला जी भाव-विह्वल सी होगई। अन्त मे सभी सखियोंने श्रावणी
पर्व पर यज्ञोपवीत धारण करते हुए वैदिकता की दीक्षा ली। निम्न
गीतों और उद्घोषो के साथ सगोष्ठी कार्यक्रम का समापन हुआ।

वही परिवार सुखी—[श्री लालमन जी आर्य, हिसार]

जो ये गुण लेवे धार, वही परिवार सुखी।
सब हो नियमों के पालक, जहां वृद्ध युवा और बालक।
उठ ब्राह्म मुहूर्त करे ओ३म् से शुद्ध हृदय से प्यार, वही परिवार०
पितु मातु बडों के रिश्ते, चरणो मे करें नमस्ते।
फिर सामूहिक गुण गान, जहां प्रभु का हो बारम्बार, वही परिवार
शौचादिक से निवृत हो, कुछ आसनादि नित कृत हो।
जहा सन्ध्या हवन स्वाध्याय, करे नित सारे ही नरनार, वही परि०
हों शुद्ध सात्विक भोजन, कर प्रभु अर्पित कर सेवन
अन्याय कमाई छोड, धर्म से करें जहाँ व्यापार, वही परिवार०
फिर सन्ध्या जो साय हो,सम्मिलित का सदा नियम हो।
सायं भोजन लें स्वल्प, शयन को जल्दी हों तैयार, वही परिवा
कहें 'आर्य' जो तुम सुख चाहो, वैदिक परिवार बनाओ।
सत्य प्रकाशन मथुरा का, पढ़ें तपोभूमि अखबार, वही

आदर्श आर्य परिवार

वही आदर्श आर्य परिवार।
वेद-वाटिका में नित खिलते अभिनव सुमन विचार ॥
पंच यज्ञ का पूर्ण प्रेम से होता विविध विधान
संध्या श्रद्धा सहित सदा हो प्रभु गुण महिमा गान
हवन से हो सुरभित गृह द्वार ॥वही०
'मा भ्राता भ्रातर द्विक्षन्' का हो आदर्श महान
रहें प्रेम से राम लक्ष्मण भाई भरत समान
उमङ्ग का उमड़े उदधि अपार ॥ वही०
हो सुशील शुचि आज्ञाकारी जहाँ गुणी सन्तान
मात पिता की सेवा रत हो 'श्रवणकुमार' समान
करे कुल की अभिनव उद्धार ॥ वही०
पति-पत्नी में प्रेम रहे नित, हो गृहस्थ सुखधाम
शिशु गण शशि सम करें किलोलें लीला ललित ललाम
स्वर्ग सम बने आर्य आगार ॥ वही०
सब संयमी विनोदी सात्विक, निज निज कर्म प्रवीन
बालक युवा वृद्ध सब में हो जीवन-ज्योति नवीन
सभी का सत्य धर्म आधार
यथा योग्य धर्मानुकूल हो सबके सङ्ग बर्ताव
कर्म काण्ड में सदाचार में श्रुति चर्चा में चाव
प्रेम का प्रकटे पारावार ॥ वही०
हो धन-धान्य धर्म से अर्जित देश जाति के हेतु
होवें षोडश संस्कारों से सज्जित जीवन-सेतु
'सूर्य' सम चमकें आर्य उदार ॥ वही०

उद्घोष

हम सुधरेंगे—जग सुधरेगा हम बदलेंगे—जग बदलेगा। दुर्गुण त्यागें—सद्गुण धारें—वैदिक परिवार बनायेंगे—धरती को स्वर्ग बनायेंगे। संसार के श्रेष्ठ पुरुषो—एक हो।